जीवन रहस्य और मृत्यु रहस्य

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम, शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773

- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563

- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667

- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027

- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-81-929055-9-4

प्रथम संस्करण : 2014 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : पचीस रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

JIVAN RAHASY AUR MRITTYU RAHASY : Dr. Harbans Lal Oberai (Hindi) Edited by Swami Samvit Subodhgiri

₹ 25

प्रकाशकीय

इसके तीनों लेख डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के चतुर्थ खण्ड से संकलित है। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद तथा सांखला प्रिंटर्स के प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग से प्रकाशित हो रहा है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

जीवन रहस्य

हम सब जी रहे हैं। किन्तु जीवन तत्त्व क्या है? इस पर प्राय: विचार नहीं करते। जीवन को जीना और जीवन के रहस्य को समझना, दो अलग-अलग बातें हैं। वैसे ही जैसे घर में रेडियो रखना और रेडियो का विज्ञान जानना। जीवन तत्त्व अमीबा से लेकर मनुष्य तक सबमें क्रीडा कर रहा है। पर जीवन तत्त्व की लीला का रहस्य मानव ही समझ सकता है, अन्य कोई जीव नहीं। मनुष्य में भी अधिकांश जीवन का बोझा या साँसों का भार तो ढो रहे हैं पर जीवन तत्त्व को समझने का प्रयास नहीं करते।

गीता के सातवें अध्याय में भगवान् ने कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत:।। 7/3, गीता

अर्थात् हजारों मनुष्यों में कोई एक विरला ही सिद्धि के लिये (अर्थात् जीवन रहस्य के उद्‌घाटन के लिये) यत्न करता है और उन यत्न करने वाले हजारों में से भी कोई विरला एक ही मुझे तत्त्व से जान सकता है। अर्थात् मुझ जीवन तत्त्व के रहस्य को समझ सकता है।

जीवन तत्त्व इतना गहन है कि हजार × हजार अर्थात् दस लाख में एक व्यक्ति ही जीवन तत्त्व का रहस्य समझ सकता है।

सृष्टि में जीवन तत्त्व आया कहां से? इस विषय में भिन्न-भिन्न विज्ञान एवं दर्शन अधूरा उत्तर देने का प्रयास करते हैं। भौतिकवादी विज्ञान (भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, नृतत्त्व विज्ञान, वनस्पति) तथा भौतिकवादी दर्शन (जड़वादी चार्वाक दर्शन Gross materialism, Scientific materialism, dialetical materialism आदि) जीवन तत्त्व का मूल स्रोत किसी भौतिक तत्त्व से ही मानते हैं। वे तर्क देते हैं कि जैसे जल और मिट्टी के संयोग से या गोबर के सड़ने से अपने आप कीटाणु, जीवाणु पैदा हो जाते हैं उसी प्रकार ये जीवन तत्त्व भौतिकता से जन्म लेकर धीरे-धीरे विकसित होते हुए मनुष्य के रूप तक पहुंचा है। उनका अनुमान है कि धरती जब जलते हुए लावे के रूप में सूर्य से पृथक् हुई तो उसके ताप से धुआं आकाश की ओर उठा और बादल बनकर पानी के रूप में बरसा। फिर मिट्टी और पानी के संयोग से Germination प्रारम्भ हुआ। डार्विन के अनुसार पहले जलचर बने (मछली आदि)। फिर थलचर और एक शाखा पंखों वाली पक्षियों से नभचर हो गये। धीरे-धीरे पशु विकसित होते हुए बन्दर और लंगूर तक पहुंच गये। लंगूरों में चिंपांजी नाम का लंगूर सबसे अधिक बुद्धिमान् हुआ और उसके पश्चात् मनुष्य का विकास हुआ।

वास्तव में भौतिकता के हठ के कारण अधिकांश वैज्ञानिक और विचारक जीवन को मृण्मय (मिट्टीवाला) तत्त्व मानते रहे हैं। जबकि जीवन तत्त्व मृण्मय न होकर चिन्मय (चेतनावाला) है। यदि मिट्टी और पानी के संयोग से जीवन का अंकुर पैदा हो सकता है तो आज भी कीटाणुरहित (Disinfect) जल को कीटाणुरहित पात्र में प्रशीतक यंत्र (Refrigerator) में रख दिया जाए तो उसमें कोई जीवाणु पैदा नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार गोबर को कीटाणु रहित करके वायु रहित शीशी में रखा जाए तो कभी कीटाणु पैदा नहीं होंगे। जैसे बीज सूक्ष्म होने से सबके ध्यान में आता नहीं और फसल (खेती) बड़ी होने पर सबके ध्यान में आ गया। उसी प्रकार गोबर या मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणु खाली आँख से दिखाई नहीं देते और बड़े होने पर दिखाई देने लग जाते हैं। यदि सूक्ष्म जीवाणु के बीजों को औषधि द्वारा हटा दिया जाए तो गोबर या मिट्टी में से अपने आप जीवन के अंकुर पैदा नहीं हो सकते। उसी प्रकार जल और वायुमंडल में अनेक जीवाणु रहते हैं। जल को शुद्ध कर लेने और वायुमण्डल को शुद्ध कर लेने से अंकुर पैदा नहीं होगा। दैनिक प्रयोग की वस्तुओं में फल का रस या शर्बत एक दिन में जीवाणु ग्रस्त हो जाने से खराब हो जाता है। उसी फल के रस या शर्बत को बन्द बोतल में कीटाणुनाशक औषधि के साथ वर्षों तक रखा जा सकता है। इस प्रकार जीवन के बीज से ही जीवन का अंकुर पैदा होता है। निर्जीव व जड़ वस्तु से जीवन पैदा नहीं हो सकता। Life issues from life and never from nonlife. We cannot get anything out of nothing. यदि जड़ पत्थर में जीवन तत्त्व है नहीं तो उसमें से हम जीवन या चेतना को प्रकट नहीं कर सकते। सबसे बड़ा प्रश्न है कि हममें जीवन और चैतन्य है। जड़ पदार्थ जीवन शून्य और चेतना शून्य है। हम कैसे मानें हमारा जीवन और चेतना उस तत्त्व से प्राप्त हुए हैं जिसमें स्वयं जीवन और चेतना है ही नहीं। निश्चय ही हमारा जीवन और चेतना किसी विश्वव्यापी चेतना का अंश है। मिट्टी+पानी – जीवाणु (disinfection) = No life. जीवन स्वतंत्र तत्त्व है। मिट्टी, पानी और गर्मी केवल उसका विकास एवं रहने योग्य वातावरण प्रदान कर सकते हैं। उसे पैदा नहीं कर सकते।

जीवन तत्त्व के अध्ययन को हम जीवन के तीन स्तरों में बांट सकते हैं—

(क) जीवन का प्राथमिक बीज—बीजाणु, जीवाणु। सबसे छोटा जीव कोष अमीबा या protoplasm

(ख) विकसित देह में आश्रित जीवन जैसे—पशु, पक्षी व मनुष्य आदि।

(ग) देहातीत—अर्थात् देह के आश्रय से मुक्त, शाश्वत जीवन। जब जीवन का अध्ययन केवल आश्रित जीवन के रूप में किया जाता है तब पंचमहाभूत उस जीवन के स्तर के लिये अनिवार्य वातावरण बन जाते हैं। क्योंकि देह पांच तत्त्वों से ही बना है। पर देहातीत या शाश्वत जीवन तत्त्व का अध्ययन किया जाता है तब

पंचमहाभूत जीवन के साधन होने के बजाय बाधक हो जाते हैं। क्योंकि जीवन तत्त्व आत्म तत्त्व है। वह पुरुष है और स्वरूप से ही प्रकृति के अधीन न होकर प्रकृति का स्वामी है। इसलिए देहाश्रित जीवन प्रकृति में परिबद्ध जीवन है और देहातीत जीवन् मुक्त एवं शाश्वत जीवन है। भौतिकवादी केवल देहाश्रित जीवन को ही देखते हैं। वे देहातीत जीवन को संभव ही नहीं मानते। इसलिए वे जीवन को एक भौतिक तत्त्व से उत्पन्न हुआ मान लेते हैं।

क्या देहातीत जीवन होता है? इस प्रकार के उत्तर पर भौतिकवाद का जीवन या मरण अवलम्बित है। हम इसी जन्म में अनुभव करते हैं कि हमारा सूक्ष्म शरीर हमारे स्थूल शरीर को त्याग कर बहुत दूर की और इच्छित लोकों की सैर कर आता है। इस सूक्ष्म मन के द्वारा हम दूसरों के मन की बात जान लेते हैं। इसीके द्वारा हमें अनेक भावी घटनाओं का पूर्वाभास मिल जाता है। इसी को विकसित करने से हम मन ही मन अपने मित्रों और साधकों से बात कर लेते हैं। इसे Mental telepathy कहा जाता है।

किसी मृतक के सूक्ष्म शरीर (वायु स्वरूप) को वश में कर लेने से भूत के द्वारा अनेक बातों की जानकारी और अनेक कठिन प्रतीत होने वाले कार्यों की पूर्ति की जा सकती है। यह निश्चय ही किसी भौतिक शरीर द्वारा नहीं हो रहा है। इस शरीर में जीवन के सभी लक्षण हैं केवल स्थूल पंचभौतिक शरीर नहीं है। इससे स्पष्ट होता है केवल स्थूल पंचभौतिक शरीर ही जीवन नहीं है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि देह के बंधन से मुक्त होकर भी जीवनी शक्ति आश्चर्यजनक खेल खेल सकती है। आजकल पश्चिम में इसका विशेष अध्ययन किया जा रहा है जिसे परामनोविज्ञान Parapsychology के नाम से पुकारा जाता है।

भौतिक शरीर के पात (देहांत) के पश्चात् क्या केवल देह का अन्त होता है या जीवन का भी अन्त हो जाता है। भौतिकवादी समझते हैं कि जीवन का भी अन्त हो जाता है। पर, भारतीय मनीषियों ने कहा और आज हजारों तथ्यों द्वारा ठोस प्रमाणों सहित सिद्ध हो रहा है कि देहान्त से जीवन का अन्त नहीं होता है। अनेकों बच्चों को पूर्व जन्म की स्मृति का होना, जन्म से बिना पढ़े ही बड़े-बड़े ग्रंथों का कंठस्थ होना, विगत जीवन की अत्यन्त गोपनीय बातों को वर्तमान जीवन में प्रमाण सहित बता सकना आदि, सिद्ध करते हैं कि जीवन देह रूपी बाहरी आवरण मात्र नहीं है। जीवन उसके भीतर का सारतत्त्व है। अत: जीवन तत्त्व के देहातीत हो सकने की सम्भावना जीवन के भौतिक अंकुरण और जीवन की भौतिकवादी व्याख्या को असत्य सिद्ध करती है।

एक जीववैज्ञानिक (Biologist) से मैंने पूछा, जीवन क्या है? वह बोला, जिसमें Activity and productivity (प्रजनन क्षमता) हो उसे जीवन कहा जाता

है। पुनः प्रश्न किया प्रजनन क्षमता क्या जीवन का अनिवार्य लक्षण है? उत्तर हां में मिला।

प्रश्न—अनेक ऐसे जीवित बलिष्ठ नर-नारी हैं जो पूर्णतः जीवित हैं, परन्तु उनके संतान नहीं होती। कुछ स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। कुछ अविवाहित रहते हैं। कुछ विवाहित होकर भी प्रजनन नहीं करते और कुछ में प्रयास करने पर भी संतति नहीं होती। क्या उन सबको जीवित माना जायेगा। यदि यह अनिवार्य लक्षण हो तो सब जीवितों में समान रूप से पाया जाना चाहिये। तब जीववैज्ञानिक बोले—प्रजनन क्षमता को छोड़कर क्रियाशीलता को ही जीवन का लक्षण माना जाय।

प्रश्न—क्रियाशीलता से क्या अभिप्राय है? घूमने-फिरने की शक्ति। क्या घूमने-फिरने वाले को जीवित माना जाएगा। उत्तर—नहीं। क्रियाशीलता किसी लक्ष्य की ओर होनी चाहिए। प्रश्न—दिल्ली से चलने वाली राजधानी एक्सप्रेस अपने लक्ष्य हावड़ा तक पहुंचती है, तो क्या उसे जीवित माना जाएगा? उत्तर—नहीं। जीवन का लक्षण है Automatic activity towards goal. प्रश्न—यदि जर्मनी से Automatic bomber फ्रांस भेजा जाता है और बिना चालक के लक्ष्य पर बमबारी करके चला जाता है, तो क्या उसको जीवन माना जाएगा? तो इस पर जीववैज्ञानिक निरुत्तर हो गया। इसके आगे हम कुछ नहीं बता सकते। अब जीवन लक्षण आप ही बताइये। मैंने बताया कि जीवन का लक्षण है Concious activity towards God. लक्ष्य की ओर सचेतन गति। जब कोई जीव लक्ष्य की ओर बढ़ता है तो उसे लक्ष्य की पहचान होती है। उसे अपने साधन की पहचान होती है, मार्ग की पहचान होती है और लक्ष्य के दायें-बायें या किसी दिशा में घूम जाने पर उसके अनुसार गति व दिशा को भी परिवर्तित करता जाता है। उसे अपने-पराये की पहचान होती है और लक्ष्य की प्राप्ति का हर्ष भी अनुभव करता है और लक्ष्य से भटक जाने का दुःख भी होता है।

इसके विपरीत जब Automatic bomber को फ्रांस के किसी मैदान में भेजा जाता है तो Bomber लक्ष्य को नहीं पहचानता है। उसी समय संयोगवश जर्मनी की सेनायें हों तो Bomber उन्हें भी मारकर लौट आयेंगे। मशीन को अपने-पराये की पहचान नहीं। Bomber को लोगों पर बम बरसाने की न खुशी और न ही गलती से अपने लोगों को मारने का गम है। राइफल या मशीनगन के आगे जो भी अपना या पराया आएगा, मारा जाएगा। यदि भूल से भाई को ही चोर समझकर गोली दाग दे तो गोली भाई को देखकर अपना रास्ता कतई नहीं बदलेगी। इसकी तुलना में लाखों-करोड़ों रुपयों के Bomber या रॉकेट की अपेक्षा एक साधारण व सूखे टुकड़ों पर पलने वाला कुत्ता यदि चोर का पीछा करता हो तो चोर जैसे दिशा बदलता है वैसे वह भी दिशा बदल लेता है, मित्र-शत्रु को पहचानता है, लक्ष्य को पहचानता है। यदि काली अंधेरी रात को दूर से हमको ही चोर समझकर भूंकता

हुआ फाड़ खाने के लिये आ जाए और हम उसका नाम ले लें तो उसका क्रोध भरा विचार तुरन्त परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि वह लक्ष्य को पहचानता है।

जहां जीवन है वहां चेतना है। चेतना के बीज बिना जीवन की कल्पना तक भी नहीं की जा सकती है। जीवन मृण्मय न होकर चिन्मय तत्त्व है। उदाहरणस्वरूप—(क) वनस्पतियों में जीवन है—यह डॉ. जगदीशचन्द्र बसु ने सिद्ध किया है। भारतीय मान्यता में वनस्पति को सदा से जीवनधारी माना जा रहा है। डॉ. बसु ने यह भी सिद्ध किया है कि अत्यन्त सूक्ष्म चेतना भी है जो इनमें सुषुप्ति की अवस्था में रहती है। उन्होंने अमेरीका में कुछ प्रयोग भी दिखाये जिनमें फूलों को कठोरता से गाली देने पर वे कुम्हलाना शुरू कर देते हैं। खुली आँख से वह प्रतिक्रिया दिखलाई नहीं पड़ती। परन्तु सूक्ष्म निरीक्षण यंत्र द्वारा कई सौ गुणा बढ़ाकर दिखलाने से कुम्हलाने की प्रतिक्रिया साफ-साफ दिखलाई देने लगी। उसी प्रकार से प्यार से बुलाने पर खिलते हैं। वनस्पतियों पर संगीत का सुखद प्रभाव और कोलाहल से दु:खद प्रभाव आज विज्ञान के प्रयोगों से सिद्ध हो रहा है।

चेतना के तीन पहलू हैं—ज्ञानात्मक, रागात्मक और संकल्पात्मक (क्रिया)। वृक्ष एवं पेड़-पौधे अपनी जड़ों द्वारा मिट्टी के भीतर ही भीतर खाद और पानी की ओर बढ़ते हैं। यदि जड़ के मार्ग में कोई बड़ी चट्टान या बाधा आ जाए तो उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हुए खाद-पानी तक वह पहुंच जाती है। प्रकाश की प्राप्ति के लिए पत्ते और टहनियां ऊपर को उठती हैं। यदि किसी अंधेरे कमरे में बेल लगायी जाए तो कुछ दिनों में रोशनदान से बाहर झांकना शुरू कर देती है। बिना चेतन के वृक्ष को कैसे पता लगता है कि खाद कहां है? अत: वनस्पति भी चेतन स्वरूप है। इसलिए चेतन के अनुरूप ही लक्ष्य की ओर बढ़ती है।

(ख) अमीबा—सबसे छोटा एक जीवकोष वाला जीवाणु है। वह इतना सूक्ष्म है कि सूई की नोक पर सैकड़ों अमीबा उठाये जा सकते हैं। न आँख है न कान और न मुख। केवल बहुत सूक्ष्म त्वचा रूप में है। यदि एक गिलास में मैदा के चूर्ण के साथ कांच का महीन चूर्ण मिला दिया जाए और उसमें एक अमीबा को छोड़ दिया जाए तो अमीबा धीरे-धीरे सब अनाज के कणों को खाता जाएगा और मार्ग में आने वाले कांच के कणों को त्यागता जाएगा। इस प्रकार कांच के कणों से बचते हुए अनाज के कणों की खोज बिना नाक, आँख वाला जैसा सूक्ष्म जीवाणु कर सकता है तो यह चेतना ही का चमत्कार है।

(ग) चींटी—गुड़ का कण या चीनी का कण लेकर अपने बिल की ओर जा रही है और मार्ग में श्री विजयकांतजी एक बालटी पानी गिरा दें और चींटी डूबने से बच जाए तो वह उस विशाल जलराशि के इर्द-गिर्द चक्कर लगाकर अपने बिल तक पहुंच जाती है।

(घ) साइबेरिया से शीत ऋतु में भारत के मैदानों में आनेवाले प्रवासी-पक्षी हजारों मील की यात्रा करके आकाश मार्ग से वापस अपने घोंसलों तक पहुंच जाते हैं। अतः लक्ष्य की ओर सचेतन गति जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्षण है।

जब जीवन चेतना के बिना हो ही नहीं सकता तो जीवन और चेतना को एक-दूसरे का पर्याय ही मानना पड़ेगा। गीता में भगवान् कहते हैं—

जीवनं सर्वभूतेषु। 7/9
भूतानामस्मि चेतना। 10/22
अहमात्मा गुडाकेश। 10/20
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्। 7/10

इससे सिद्ध होता है कि जीवन, चेतना, आत्मा, परमात्मा ही सृष्टि का सनातन बीज है। यह उसकी लीला है कि वह कभी जीवाणुओं में खेलता है कभी स्वेदज में, कभी अंडज, जारज और पिण्डज यानी सभी जीवों में खेल खेलता है और कभी शरीरों से मुक्त होकर नित्यमुक्तस्वभाव निजानन्दरूप बनकर शाश्वत जीवन-लीला करता है। तब वह जीवन् मुक्त, देहातीत अथवा ब्रह्मलीन कहा जाता है।

अमीबा से मनुष्य तक जो विकास की सीढ़ी है वह भौतिक विकास के सिद्धान्त से स्पष्ट कभी नहीं हो सकती। क्योंकि वह जीवन तत्त्व के, चैतन्य के रूप में उत्तरोत्तर खिलते जाने का बहुत सुन्दर क्रम है। अतः यह जड़ के विकास की कहानी न होकर चेतन के विकास की कहानी है।

(क) एक पत्थर प्रकट रूप से पूर्णतया जड़ है। चाहे बाद में अन्तिम खोज पर उसमें भी चैतन्य तत्त्व सोया हुआ या छिपा हुआ मिलता है। The same spirit sleeps in a stone, dreams in an animal and awakes in man. वही आत्मा पत्थर में सो रही है, पशुओं में स्वप्न ले रही है और मनुष्यों में जाग उठती है। पत्थर में जड़ता है। जीवन प्रकट नहीं है, चेतना प्रकट नहीं है। बौद्धिक चेतना भी नहीं, नैतिक चेतना भी नहीं। आत्मचेतना का प्रश्न ही नहीं उठता।

(ख) पेड़-पौधे-वनस्पति में कुछ मात्रा में जड़ता है। क्योंकि स्थावर है। किन्तु उसमें जीवन का प्राकट्य हो गया है। पौधे अपने खाद-पानी (खुराक) वायु व प्रकाश को पहचानते हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए बढ़ते हैं। वनस्पतियों को सुख-दुःख की सूक्ष्म अनुभूति भी होती है। काटने वाले व्यक्ति को देखकर पौधा भय से कांपने लगता है और माली को देखकर प्रफुलित हो जाता है। पौधे में जीवन स्पष्ट है पर चेतना बहुत कम विकसित होने के कारण गहन सुषुप्ति की अवस्था में छिपी हुई है। पौधों में बौद्धिक चेतना या तर्क-वितर्क करने की योग्यता नहीं है। उनमें नैतिक चेतना का भी विकास नहीं हुआ है जिससे भले-बुरे, नैतिक-अनैतिक

का निर्णय कर सके। उनमें आत्मिक चेतना कि मैं कौन हूं या आत्मज्ञान का प्रश्न ही नहीं उठता।

(ग) पशु-स्तर पर जीवन और भी विकसित होकर जंगम एवं गतिमान हो गया है। पशुओं में चेतना पौधों की अपेक्षा अधिक विकसित हो गयी है। जीवन तत्त्व खिलता है तो चेतना की पंखुड़ियां खुलती जाती हैं। पशुओं को दुःख-सुख की स्पष्ट अनुभूति होती है। अपने-पराये, मित्र-शत्रु की पहचान, लक्ष्य की पहचान स्पष्ट होती है। किन्तु उनमें बौद्धिक चेतना का अभाव है। नैतिक चेतना भी प्रायः नहीं है। डाकू का कुत्ता डाकू के प्रति, सज्जन का कुत्ता सज्जन के प्रति, यह उसकी पशु प्रवृत्ति ही है। यदि उसमें नैतिक विवेक होता तो डाकू का कुत्ता अपने मालिक को डाके से रोकता, सहयोग नहीं करता। किन्तु चूंकि पशु-स्तर के पश्चात् जीवन का विकास मानव स्तर पर होने वाला है इसलिए ऊँचे स्तर के पशुओं में कुछ नैतिक चेतना का पूर्वाभास मिलने लगता है। महाराणा प्रताप के चेतक ने क्षत-विक्षत होते हुए भी अपने स्वामी को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने के बाद ही प्राण छोड़ा। कई हाथी बड़ी समझदारी के और विवेक के कार्य करते हैं। गोलकोंडा के जंगल में शुद्धिकार्य के लिए जाते समय मेरे को एक जंगली हाथियों का परिवार मिला। वे स्वभाव से भयंकर माने जाते हैं। मेरी जीप का ड्राइवर जीप को छोड़कर भाग गया। हाथी-हथनी और उसका बच्चा सूंड उठाकर भयंकर चिंघाड़ करते हुए उनकी ओर दौड़े आ रहे थे। मैंने ढोलक के साथ जयगणेश-जयगणेश का कीर्तन करना शुरू किया। कुछ क्षणों बाद ही हाथी सिर हिला-हिला कर झूमने लगे और जंगल में एक ओर चले गए। हाथी विपत्ति में पड़े हुए जीवों की उपयोगी सहायता करता हुआ पाया गया है। वह अपनी सूंड में जलभर कर शिव का जलाभिषेक करता है। गंध-पुष्प आदि चढ़ाता है। प्यासे को पानी पिलाता है। अन्यायी को खोज कर दण्ड देता है।

यूनान की एक प्रचलित कथा है। एक शेर के पांव में कांटा चुभ गया था और एक व्यक्ति ने कांटा निकाल दिया। कुछ माह के पश्चात् राजा ने उसी व्यक्ति को द्वेषवश पकड़ कर भूखे शेर के आगे डालने का आदेश दिया। किन्तु शेर ने भूखा होते हुए भी अपने उस उपकारी को पहचान लिया और उसका पांव चूमने लगा। गाय सबसे सात्त्विक पशु है। उसमें नैतिक चेतना अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक है। एक सदाचारी पहलवान के ऊपर दुष्टों का आक्रमण होने पर गायों ने गुण्डों को सींगों से मार-मार कर भगा दिया। कई गायें जंगल में शिव की पिण्डी पर अपने आप जाकर दुग्धधारा से अभिषेक करती थीं। बप्पारावल (महाराणा प्रताप के पूर्वज) ने देखा कि एक गाय का दूध नहीं निकलता था, तो उन्होंने जंगल में जाकर देखा कि वह शिवलिंग का दूध से अभिषेक कर रही है। तभी से मेवाड़ के राजाओं ने एकलिंग महादेव को अपना कुलदेवता माना। इस प्रकार पशुओं में भी नैतिक चेतना की झलक मिलने लगती है।

(घ) मनुष्य में जीवन का सर्वोत्तम विकास हुआ है। उसमें सत्ता है, जीवन है, चेतना है। मानसिक चेतना बौद्धिक चेतना है नैतिक चेतना है, और आत्म चेतना की योग्यता भी है। अरस्तू ने मनुष्य की परिभाषा करते हुए कहा है Man is rational animal अर्थात् मनुष्य एक तर्कशील प्राणी है। पर यह परिभाषा अधूरी ही है। क्योंकि तर्क की योग्यता से ही मानव जीवन का पूर्ण प्रतिफलन नहीं हो जाता। इसके विपरीत हम प्रायः देखते हैं मानव तर्कशक्ति का दुरुपयोग करके सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध करके अपने पापों को छिपाता है और समाज के अपराधों को बढ़ाता है। यदि तर्कशील प्राणी ही मनुष्य है तो घृणित से घृणित सामाजिक अपराध करने वाले और समूची मानवता के माथे पर कलंकरूप अपराधी जनों के वकील उन दुष्टों को दण्ड से बचाने के लिए न्यायालय में तर्क-वितर्क करते ही हैं। क्या अपराध के संरक्षक बनकर भयंकर अपराधियों को बचाने का प्रयास करने वाले rational animal ही सच्चे मनुष्य हैं? दिल्ली में बिल्ला और रंगा जैसे अपराधियों के द्वारा निर्दोष बच्चों की हत्या एवं बलात्कार काण्ड से सारा देश विक्षुब्ध हुआ और मानवता लज्जित हो गयी। किन्तु न्यायालय में उनके बचाव के लिये तर्क-कुतर्क करने वाले वकील अपराध के संरक्षक एवं अपराधियों के त्राता बनकर क्या अपनी मनुष्यता की परिभाषा सिद्ध कर रहे थे? अतः मानव को पशु से पृथक् करने वाला विशेषगुण केवल rationality ही नहीं है। मानव को पशु से पृथक् करने वाले विशेष गुण तीन हैं जो क्रमशः एक दूसरे से ऊपर हैं। वे तीन विशेष गुण हैं—

(1) Rationality
Morality
spirituality

animality must be controlled by mentality and mentality by rationality, rationality by morality and morality by spirituality.

पशुता पर मानसिकता का अंकुश होना चाहिए। मानसिकता पर बौद्धिकता का अंकुश, बौद्धिकता पर नैतिकता का नियंत्रण और नैतिकता पर आध्यात्मिकता का नियंत्रण होना चाहिए। इस क्रम से जीवन विकसित हुआ है और इसी क्रम से ही मानव जीवन सच्चा विकास कर सकता है। कई मनुष्य शरीर से मनुष्य होते हुए भी पत्थर या खनिज पदार्थ के समान जड़ एवं चेतना शून्य पड़े रहते हैं। वे खनिज स्तर के जीव ही हैं। कई वनस्पति स्तर के जीव हैं जो स्थावर प्रकृति के हैं और उन्हें पड़े-पड़े ही खाना-पीना मिलता रहे। वनस्पति स्तर के विलासी, भोगी, रोगी, तमोगुण विशेष हैं। कई नर पशु के स्तर पर है जो पशु-प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के वश, खाने-पीने, मौज उड़ाने, लूटने-पाटने जैसे उत्पातों में लगे रहते हैं। ये रजोगुण विशेष Hedonist वाले भौतिकवादी है। कुछ मनुष्य बुद्धि की चालाकी को ही मनुष्यता का मापदंड मान बैठते हैं। इसमें दो स्तर हैं। एक चतुर

चालाक हैं जो बुद्धि की जागरूकता से दूसरों द्वारा ठगे नहीं जा सकते। दूसरे धूर्त लोग जो अपनी बुद्धि की अतिशय चालाकी से दूसरों को ठगते रहते हैं। मनुष्य का चतुर होना तो अभीष्ट है पर उसका धूर्त होना कभी भी अभीष्ट नहीं है। रजोगुण जब तमोगुण का सहयोगी होता है तब बुद्धि की चतुराई को धूर्तता की ओर खींचकर ले जाता है। जैसे रावण बड़ा बुद्धिमान् होने पर भी आचारहीन, धूर्त सिद्ध हुआ। वह साधुवेश धारण कर धोखे से सीता को हर कर ले गया।

आजकल अधिकांश आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोग सच्चे अर्थ में बुद्धिमान् न बनकर धूर्त ही बनते हैं। Modern Western education is producing not wise man but only civilized crooks in 20th centuary. 20वीं शताब्दी सभ्य धूर्त पैदा कर रही है। बैरिस्टर लोग कानून की सबसे बड़ी पढ़ाई करने के बाद भी यदि अपराधों को पोषण एवं अपराधियों को संरक्षण देते हैं तो क्या वे सभ्य धूर्त नहीं हैं। आधुनिक सभ्यता का सबसे बड़ा अभिशाप यही है—मिथ्याचार और धूर्तता।

रजोगुण जब सतोगुण की ओर उन्मुख होता है तब बुद्धि नैतिक नियंत्रण में विकसित होती है। इसी निर्मल बुद्धि को ही गायत्री में प्राथमिकता दी गई है। बुद्धि मनुष्य की ऐसी महान् शक्ति है जो धरती और आकाश के रहस्य को खोलने वाली है। इहलोक-परलोक, नर और नारायण, कर्म और धर्म, वर्तमान और भविष्य की साधना-सिद्धि, दोनों को परस्पर जोड़ने वाला सूत्र बुद्धि ही है। इहलोक में वर्तमान की समस्याओं का हल बुद्धि ही कर सकती है और भविष्य में यह शरीर छूटने के बाद मुझे कहां जाना है और क्या लक्ष्य है इसका रहस्य तो बुद्धि ही खोलती है। बुद्धि वह विचारशक्ति है जो बड़े-से-बड़े रहस्यों की गांठ खोल देती है। मतिभ्रष्ट, मतिनष्ट और मतिशून्य होना एक दुर्भाग्य है। खनिज, वनस्पति और पशु प्रायः मतिशून्य हैं। अपराधी मानव मतिनष्ट है और बुद्धि की धूर्तता से अपराधों का चालाकी भरा, तर्कछल द्वारा संरक्षण और पोषण करने वाले लोग मतिभ्रष्ट हैं। गांधीजी के पास एक व्यक्ति ने बार-बार बहुत प्रबल आग्रह किया कि वे बैरिस्टर होने के नाते कचहरी में उसके केस की पैरवी करें। किन्तु बड़ी-से-बड़ी फीस का प्रलोभन देने पर गांधीजी ने कहा—जब मैं जानता हूं कि तुम अपराधी हो तो मैं तुम्हारी वकालत कभी नहीं कर सकता। मदनमोहन मालवीयजी के पीछे एक व्यक्ति कई वर्ष तक लगा ही रहा कि वे उसकी पैरवी करें। किन्तु मालवीयजी इनकार करते रहे। अन्त में उसने बनारस विश्वविद्यालय के लिये एक लाख रुपये की राशि दान दी और मालवीयजी को अपने केस की फाइल दे गया। मालवीयजी ने कहा कि मेरा प्रथम कर्तव्य यही होगा कि मैं न्यायालय में साफ-साफ बता दूं कि तुम अपराधी हो। उस व्यक्ति के आश्चर्य प्रकट करने पर मालवीयजी ने कहा, मैंने वकालत न्याय के संरक्षण के लिए पढ़ी है, अन्याय के संरक्षण के लिए नहीं।

आज संसार में जितने पाप व अपराध हो रहे हैं वे बुद्धि की मंदता, बुद्धि की विकृति, बुद्धि की नष्टता और बुद्धि की भ्रष्टता के कारण ही हैं। बुद्धि की उज्ज्वलता ही नर को आदर्श नरत्व की ओर, देवत्व की ओर, ब्रह्मत्व की ओर विकसित होने में सहायक है। इसलिए गायत्री में बुद्धि की उज्ज्वलता और बुद्धि के नैतिक मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना करते हैं। नैतिक चेतना सही अर्थ में एक मानवीय उपलब्धि है। चरित्र एक महामानवीय गरिमा है। पशुओं के शब्दकोश में चरित्र और नैतिकता के शब्द हैं ही नहीं। एक कुत्ता जिस कुतिया के गर्भ से जन्म लेता है यदि उसी के साथ बड़ा होने पर संभोग करे तो वह पशुओं में बुरा नहीं माना जाता। पशुओं के प्रजनन केन्द्रों में किस नर पशु का किस मादा पशु से मेल कराया जाए इसकी कोई मर्यादा नहीं है। मनुष्य की मनुष्यता की सच्ची कसौटी उसका चरित्र ही है जिसके बिना वह मनुष्य के रूप में निरा-पशु ही है।

कार्लमार्क्स अपने कम्यूनिज्म के सिद्धान्त में कहते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ व्यक्तिगत परिवार भी एक बुराई है जो नष्ट होना चाहिए।

Private family is as great evil as private property. Hence it must be avoided.

मार्क्स Commune (साझा गांव) की कल्पना करता है जिसमें सब लोग सहकारी जीवन जीयेंगे। न किसी का कोई व्यक्तिगत धन न व्यक्तिगत परिवार होगा। सब धन समाज का, सब स्त्री समाज की, सब पुरुष समाज के, सब बच्चे समाज के होंगे। इसका अर्थ हुआ भारत में सदा से प्रतिष्ठित गृहस्थी के लिए अनिवार्य पतिधर्म और सतीधर्म का सर्वनाश। दूसरे शब्दों में animal husbandry पशु प्रजनन केन्द्र के समान Human Husbandry मानव प्रजनन केन्द्र की रचना। मार्क्स की मृत्यु के बाद मार्क्स के पट्टशिष्य लेनिन ने रूस के पेरिस नगर में Commune का प्रयोग किया किन्तु उसके परिणाम बड़े भयंकर निकले। 75 प्रतिशत बच्चों को यौन रोग लग गया तथा पूरा समाज व्यभिचार एवं हिंसा की अग्नि में जलने लगा। इसलिए यह प्रयोग बंद करना पड़ा।

इस प्रकार चरित्रहीन मानव मानव न रहकर पशु बन जाता है। बिना चारित्रिक आधार के पूरा समाज वेश्यालय बन जाता है। नैतिक चेतना वास्तव में धर्म की ही चेतना है। भारत में धर्म शब्द नैतिकता एवं कर्तव्य का परिचायक है न कि मत अथवा सम्प्रदाय का। इसलिए भर्तृहरि ने कहा—**'धर्महीना पशुभिः समाना।'** नैतिक चेतना का महत्त्व भारत के सभी दार्शनिकों के अतिरिक्त पश्चिम के सभी सुलझे हुए दार्शनिकों ने भी स्वीकार किया है। किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या नैतिक विकास जीवन का अन्तिम लक्ष्य है? यदि मनुष्य किसी अन्य मनुष्य के प्रति कोई आचरण (अच्छा-बुरा) करना चाहे तो कम से कम दो बातें अपेक्षित हैं। एक कर्ता और दूसरा कर्म (जिसके प्रति क्रिया की जाती है)। किन्तु यदि मनुष्य अन्य व्यक्तियों और समाज

की भलाई के लिए अच्छा कर्म करता रहे तो भी उसे यह सोचने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि जिस शरीर से अच्छा कर्म किया वह शरीर एक दिन छूट जाएगा और जिन व्यक्तियों और समाज के लिए कर्म किया उनसे भी साथ छूटना निश्चित है। उस परिस्थिति में तब मेरी क्या स्थिति होगी। इसके लिए मनुष्य को नैतिकता से आगे आध्यात्मिकता का भी चिन्तन करना पड़ता है। जीवन का लक्ष्य—**आत्ममोक्षार्थं जगद्धिताय च।** अपनी मुक्ति और जगत् का भला। यदि जग की भलाई करके अपनी मुक्ति की साधना नहीं की तब भी घाटे का सौदा हो जाएगा। क्योंकि जग का भला तो सोचा पर अपना सच्चा भला नहीं सोचा। इसलिए नैतिकता आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख एवं उससे प्रेरित भी रहनी चाहिए। वास्तव में बिना नैतिकता के आध्यात्मिकता का कोई अधिकारी नहीं बन सकता और बिना आध्यात्मिकता के नैतिकता अविकारी नहीं रह सकती। नैतिकता अन्तिम सीढ़ी है जिस पर पांव रखे बिना आध्यात्मिकता के सर्वोच्च शिखर पर नहीं पहुंचा जा सकता। किन्तु आध्यात्मिकता की जंजीर पकड़े बिना नैतिकता की सीढ़ी पर टिके रहना भी अत्यन्त कठिन है। Without morality talk of spirituality is hypocracy and without spirituality morality cannot stay longer. Goodness leads to Godliness and Godliness protacts goodness.

वैदिक शब्द ऋतम् नैतिक नियम का पर्याय है। रामायण, महाभारत आदि में इसी ऋतम् को धर्म कहा है। वैदिक शब्द सत्यम्—आध्यात्मिक परमसत्ता का बोधक है। ऋतम् के बिना सत्यम् की उपलब्धि नहीं होती और सत्यम् के बिना ऋतम् में निष्ठा अविचल रह नहीं सकती।

बौद्ध दर्शन में नैतिक जागरण का एक महानतम अभियान मिलता है। भगवान् बुद्ध का जीवनकार्य भी यही था समाज का नैतिक पुनर्जागरण करना। पर ईश्वर की सत्ता के विषय में उनके मौन से बाद में बड़ी भ्रान्तियां फैल गई। बाद में प्राय: सभी बौद्ध दार्शनिक खुलेआम नास्तिकता का प्रचार करने लगे। कालान्तर में लोगों के मन में संदेह पैदा हुआ। जब सब कुछ जानने वाला सर्वान्तर्यामी सब जगह वर्तमान, सर्वव्यापक और सबको उचित फल देने वाला सर्वशक्तिमान ईश्वर है ही नहीं तो भला कर्मफल कौन देगा? इसलिए कर्मफल भी मिथ्या कल्पना मात्र ही बचता है। जब कर्मफल सिद्धान्त टूट जाता है तो नैतिकता की मानो रीढ़ की हड्डी ही टूट जाती है। Law of universal justice ही कर्मफल सिद्धान्त है जिसका कथन है—

अवश्यमेव लभते फलम्, कृतं कर्म शुभाशुभम्। मनुष्य के किये गये अच्छे या बुरे कर्म का फल अवश्य ही मिलता है।

यदि अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा फल सदा सब देश और काल में मिलता है तभी विश्वव्यापी न्याय हो सकता है। यदि विश्वव्यापी न्याय की तुला

डगमगा जाती है तो नैतिकता का कोई आधार ही नहीं बचता। विश्वव्यापी नैतिक न्याय के लिए कर्म सिद्धान्त का नियामक किसी ऐसी शक्ति को होना पड़ेगा जो सब जीवों के सब कर्मों को उनकी अन्तर्मन की भावनाओं को सीधे वहीं से जान ले। विश्वव्यापी न्याय के लिए आवश्यक है सृष्टि के नैतिक नियम की प्रतिष्ठा और नैतिक नियम के नियामक ऐसे परम पुरुष अथवा परम शक्ति की अनिवार्यता जो कर्मों के मूल उत्स को भी जाने। जहां कहीं छिपकर कर्म किया जाए वहां भी वर्तमान हो। जहां कहीं भागकर जाय वहां भी पहले से ही मौजूद हो। और वह इतना शक्तिशाली हो कि कोई व्यक्ति उसके अनुशासन का निरन्तर उल्लंघन करते रहने एवं कर्म के अच्छे-बुरे फल को न भोगने की धृष्टता न दिखा सके। अतः कर्म-सिद्धान्त के विश्वव्यापी नैतिक नियम के नियमन के लिए और विश्वव्यापी न्याय की तुला को स्थिर रखने के लिए एक अन्तर्यामी, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान सत्ता आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है।

जैन दर्शन कर्म सिद्धान्त को तो उचित प्रतिष्ठा देता है किन्तु सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानता। प्रश्न उठता है कि कर्मफल का प्रदाता नियामक कौन है? शंकराचार्य के समय यह दार्शनिक शास्त्रार्थ चलते रहते थे कि—फलप्रदः कर्म, फलप्रदोऽजः। क्या कर्मफल दाता कर्म ही है अथवा कोई अज, ईश्वर। तो जैन दर्शन कहता है फल तो कर्म से अपने आप ही पैदा होता है इसके लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं। जैसे अग्नि में हाथ डालने से हाथ जलता है। विष खाने से मनुष्य मरता है। इसमें ईश्वर की इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न कहां उठता है? आज के वैज्ञानिक भी कहते हैं लिटमस पर एसिड डाला जाए तो लाल हो जाता है। इसमें ईश्वर की इच्छा-अनिच्छा की कोई आवश्यकता नहीं। शंकराचार्य का प्रश्न है यदि देवदत्त ने सोमदत्त की हत्या कर दी तो इस हत्या के कर्मफल का विधान कौन करेगा? मृतक गवाही दे नहीं सकता कि हत्या किसने की? खून भी गवाही नहीं दे सकता, छुरा भी साक्षी नहीं दे सकता क्योंकि वह जड़ है। हत्यारा भाग जाता है और पकड़े जाने पर भी अपने को दोषी नहीं मानता। हत्या कर्म भी जड़ है। वह न हत्यारे को पहचानता है न हत्या के पात्र को, न ही हत्या के शस्त्र को। अब कौन निर्णय करे कि दोषी कौन है? हत्यारा चेतन है, किन्तु बचने के लिए अपने को हत्यारा घोषित नहीं करता। यदि कर्मफल का निर्णय उसी पर छोड़ दिया जाए तो कोई हत्यारा अपने को फांसी लगाना नहीं चाहेगा। इस तरह कर्म के दोषी का निर्णय और कर्मफल का निर्णय कर्म भी नहीं, करण, उपादान भी नहीं, सम्प्रदान भी नहीं कर सकता, केवल कर्ता कर सकता है, यदि वह निष्पक्ष हो। कर्म, करण, क्रिया आदि सब जड़ हैं। कर्ता ही चेतन है, पर निष्पक्ष कर्ता मिलना मुश्किल है। इसलिए यदि कर्म सिद्धान्त की प्रतिष्ठा रहनी है तो कर्म का नियामक कोई निष्पक्ष न्यायकर्ता, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान ईश्वर होना चाहिए। आधुनिक युग में Communism भी लोक कल्याण का प्रचार

करता है और कुछ मात्रा में उन लोगों के द्वारा लोक कल्याण होता भी है, किन्तु कुछ समय पश्चात् उनके मन में Communism की नास्तिक आस्था के कारण एक प्रतिक्रिया पैदा होती है कि ईश्वर किसी उचक्के, बदमाश का नाम है। 'नैतिक मूल्य', पुराने जमाने के खोटे सिक्के हैं। धर्म जनसाधारण को नशे में भुलाये रखने के लिए अफीम मात्र है, कर्म फलदाता कोई है ही नहीं। इस जन्म के बाद कोई जन्म भी नहीं है। यहां इस जन्म में अपने कर्मों का फल नहीं मिल सकता तो हम अच्छे कर्म करे ही क्यों? यदि मृत्यु के बाद अगला जन्म ही नहीं और मृत्यु एक संत और दुष्ट को मिट्टी में ही मिला देती है, तो हमें सज्जन बनने की आवश्यकता ही क्या? यदि एक हत्यारा लाखों लोगों की हत्या करने के बाद एक विषैली गोली खाकर अपनी आत्महत्या कर लेता है, तो संसार का कोई न्याय-विधान तो दंड दे ही नहीं सकता और यदि पुनर्जन्म में भी उसे इन कुकर्मों का फल न मिलने वाला हो तो न्याय की तुला टूट जाएगी और मनुष्य निर्भय होकर अपराध करने लगेंगे। यदि एक सज्जन की अच्छाई का अन्तिम परिणाम और दुष्ट की बुराई का अन्तिम परिणाम समान रूप से मर कर मिट्टी बन जाना ही हो तो किसी के सज्जन बनने और कल्याण कर्म करने की प्रेरणा ही कहां बचेगी? इसलिए आध्यात्मिकता विहीन नैतिकता अधिक देर तक टिक नहीं सकती। Communist देशों में होने वाले व्यापक हत्याकांडों, हिंसा, उत्पीड़न, बलात्कार आदि भयंकर घटनाओं के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण उनकी नास्तिकता ही है। नास्तिक व्यक्ति निकलता है कल्याण करने और कर बैठता है अकल्याण। इसलिए गरीबों-मजदूरों का कल्याण का नारा देकर गरीबों का ही शोषण किया जा रहा है और प्रत्येक खूनी क्रांति में उन गरीबों को ही तोप का बारूद बनाकर उड़ाया जा रहा है। जो जीवन दर्शन यह निष्ठा लेकर चलता है कि विश्व का अंतिम सत्य जड़भूत ही है उसे भौतिकवाद, जड़वाद, भोगवाद Materialism कहते हैं। England का मध्यकालीन दर्शन hedonism, मार्क्स का Communism, डार्विन का विकासवाद तथा मोटे तौर पर सारे पश्चिम का बहुलांश में यही जीवन दर्शन है। इसके विपरीत जीवन की वह प्रणाली जो यह आस्था लेकर चलती है कि विश्व का अन्तिम सत्य चेतन आत्मा है उसे आत्मवाद, अध्यात्मवाद या spiritualism कहते हैं। इन दोनों विचारधाराओं में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक मृण्मय है, दूसरा चिन्मय है। एक भोगवाद तो दूसरा योगवाद। एक बहिरंग का उपासक तथा दूसरा अंतरंग का। आजकल कई सज्जन कहते रहते हैं कि भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद का समन्वय होना चाहिए। वास्तव में यह शब्दप्रयोग दार्शनिक दृष्टि से अशुद्ध है। जब एक वाद घोषणा करता है, जड़ पदार्थ ही अन्तिम परम सत्ता और चेतन का अन्तिम परीक्षण में कुछ अस्तित्व ही नहीं बचता है, जड़ ही अन्तिम तत्त्व बचता है तो दूसरी ओर अध्यात्मवाद बिल्कुल इसके विपरीत चेतन को ही अन्तिम सत्ता और जड़ को अन्तिम परीक्षण में मिथ्या या माया मानता है। इन दोनों विचारधाराओं की

परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध तलवार तनी हुई है। तो इन वादों का समन्वय सोचने में भी असंगत लगता है। इसलिए इन दो वादों का समन्वय न कह कर यदि कोई कहे कि जीवन में प्रगति के लिए जड़ पदार्थ और चेतन आत्मा का यथास्थान महत्त्व है तो कुछ युक्तिसंगत लगता है। प्रत्येक माता के जीवन में काम-भोग का यथास्थान मर्यादित महत्त्व है क्योंकि उसके बिना उसकी संतति होगी ही नहीं और वह मां नहीं कहलाएगी। पर काम-भोग उसके जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य या परम सत्य नहीं है। दूसरी ओर एक वेश्या के जीवन का चरमलक्ष्य सर्वोपरि सत्य कामभोग ही है इसलिए वेश्या भोगवादी होने के कारण तिरस्करणीय है और माता सती होने के कारण पूजनीय है। इसलिए पदार्थवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय नहीं हो सकता जैसे वेश्या के भोगवाद और माता के सतीवाद का समन्वय नहीं हो सकता। हमारी आध्यात्मिक संस्कृति में पदार्थ का भी यथोचित मर्यादित स्थान है। हमारे चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। काम हमारा मनोवैज्ञानिक आदर्श है। जिसमें धर्म की मर्यादाओं में रहते हुए सांसारिक सुख-कामनाओं की प्राप्ति को उचित महत्त्व दिया गया है। अर्थ हमारा आर्थिक और राजनीतिक आदर्श है, जिसमें धर्म पर चलते हुए धन्य-धान्य की प्राप्ति, राज्य की वृद्धि एवं समृद्धि को उचित महत्त्व दिया गया है। धर्म हमारा नैतिक आदर्श है, शरीर से लेकर ब्रह्म पर्यन्त समस्त कर्तव्यों की विधिवत परिपूर्ति पर बल दिया गया है। वह धर्म या ऋतम् हमारे भारतीय जीवन के ताने-बाने का केन्द्रीय तन्तु है। इसका चारों पुरुषार्थों में महत्त्वपूर्ण योगदान है। बिना धर्म के अर्थ अनर्थ हो जाता है—**'धर्मविहीनम् अर्थम् अनर्थम्, यज्ञविहीनम् अर्थम् व्यर्थम्।।'**

अर्थात् पाप की कमाई का पैसा अनर्थकारी होता है और समाज कल्याण रूपी यज्ञ में समर्पण किये बिना अर्थ व्यर्थ होता है। डाकू का पैसा अनर्थ है और कंजूस का पैसा व्यर्थ है। अर्थ न अनर्थ होना चाहिए न व्यर्थ। अर्थ सार्थक तभी होता है जब धर्म के द्वारा कमाया जाए और यज्ञ भावना से धर्मार्थ कार्य में लगाते हैं। धर्म की इस मर्यादा के बिना पाश्चात्य अर्थशास्त्र इस अर्थ का जो व्यवहार सिखलाता है कि वह आज पश्चिम में बहुत बड़े अनर्थ का कारण सिद्ध हो रहा है। पाश्चात्य अर्थशास्त्र में यह पढ़ाया जा रहा है कि हर मानव स्वार्थी है। जीवन का लक्ष्य अर्थ ही है तथा अर्थशास्त्र के व्यापार पर नैतिकता या धर्म या शास्त्र का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। इन तीनों मान्यताओं का तार्किक निष्कर्ष लंदन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. बेन्हम के उस ग्रंथ में Economics of Prostitution में मिलता है। इसलिए उन्होंने कहा है कि एक माता या पत्नी मिलकर जितना कार्य करती है वह दो नौकरानियां मिल कर सकती हैं इसलिए एक माता-पत्नी का आर्थिक मूल्य लगभग 50 पौण्ड है। उसकी तुलना में एक वेश्या उससे 100 गुणा राशि प्रतिमाह कमा लेती है इसलिए शुद्ध अर्थशास्त्र की दृष्टि से एक वेश्या का कार्य माता या

पत्नी के कार्य से अधिक लाभकारी है। इस प्रकार धर्मविहीन अर्थ अनर्थ की ओर ले जाता है। बिना धर्म के अंकुश के काम भी व्यभिचार बन जाता है—

धर्मविहीनं कामं भोगम्, संयमहीनं कामं रोगम्।

इस प्रकार भारत की आध्यात्मिक संस्कृति में काम एवं अर्थ का यथोचित व मर्यादित महत्त्व अवश्य है किन्तु वह धर्म के अंकुश में ही मंगलकारी रहता है और जीवन के क्रमिक विकास में सहायक बनता है। धर्म या नैतिकता को आध्यात्मिक आधार एवं प्रेरणा की आवश्यकता रहती है यह ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। संक्षेप में आध्यात्मिक आधार के दार्शनिक परिणाम इस प्रकार होंगे—

(क) मैं चेतन आत्मा हूं। सब भौतिक वस्तुओं का ज्ञाता, निर्माता, उपभोक्ता, प्रयोगकर्ता एवं निर्लिप्त द्रष्टा हूं।

(ख) मैं चेतन सब वस्तुओं का स्वामी हूं और भौतिक वस्तुएं मेरे साधन व उपकरण एवं लीला के ही खेल-खिलौने हैं। पैसे की तुलना में वस्तु और वस्तु की तुलना में व्यक्ति और व्यक्ति में भी उसका चेतन आत्मा उत्तरोत्तर महत्त्व के हैं। इसलिए अपने आचरण में मैं पैसे के स्वार्थ में वस्तु का अनादर, वस्तु के स्वार्थ में व्यक्ति का अनादर या आत्मा का तिरस्कार नहीं करूंगा।

(ग) जड़ से चेतन अधिक मूल्यवान है इसलिए जड़ के लिए चेतन को कलंकित नहीं होने दूंगा। नश्वर के लिए अनश्वर को नहीं त्यागूंगा। क्षुद्र के लिए महान् को नहीं ठुकराऊंगा। व्यक्ति के लिए समष्टि को क्षति नहीं पहुंचाऊंगा।

(घ) क्योंकि मैं अमर आत्मा हूं, इसलिए मुझे न आतंक का त्रास कर्तव्यपथ से डिगा सकता है न मृत्यु का भय डरा सकता है। अध्यात्मवादी निर्भय होकर कर्तव्यपथ पर बढ़ता है। संकटों को हंसते-हंसते झेलता है और फांसी के तख्ते पर या जल्लाद की तलवार के सामने मुसकराता रहता है।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पश्यति।

आत्मज्ञानी पुरुष सब भूतप्राणियों को अपना आत्मा ही मानकर व्यवहार करता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अन्य या पर को कष्ट दे सकता है किन्तु स्वयं अपने आपको नहीं सताना चाहता है। जब सब प्राणी मेरी ही आत्मा है तो मैं किसकी जेब काटूं और किसका गला काटूं। अतः सच्ची नैतिकता आध्यात्मिक दृष्टि खुलने पर ही जगती है।

(ङ) आत्मवादी व्यक्ति इतना उदार होता है कि वह सबके दुःख को अपना दुःख मानकर दूसरे के क्लेशहरण हेतु एवं दूसरों की सेवा हेतु सचेष्ट रहता है।

(च) मानव और प्रत्येक जीव को भी सबसे प्यारा मैं (अपना आप) ही होता है। अन्य सब सम्बन्ध इसकी तुलना में दूसरे, तीसरे व चौथे दर्जे पर ही आते

हैं। देहाध्यासी व्यक्ति अपने मैं की सीमा अपने शरीर तक ही मानता है और इसके अतिरिक्त सबको पर या पराया समझता है। यही स्वार्थ अथवा क्षुद्रता का मूल कारण है—

अयं मम परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

यह मेरा है अथवा पराया है, यह गणना क्षुद्र बुद्धि वालों की होती है। इसके विपरीत अध्यात्मवादी व्यक्ति जब सब में आत्मा (मैं) का दर्शन करता है तो कोई वैरी या पराया बचता ही नहीं तथा स्वार्थ का मूल आधार ही नष्ट हो जाता है—

बिसर गई सब तात पराई, न कोई वैरी न ही बेगाना।
सकल संग हमरी बन आई, बिसर गई सब तात परायी।।

—गुरुनानक देव

ईशोपनिषद् के छठे मंत्र में भी कहा है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

जो सब भूतप्राणियों को आत्मा करके देखता है वह आत्मदर्शी किसी से घृणा कर ही नहीं सकता।

(ज) भाषा की लाचारी से और व्यवहार की सुगमता के लिए हम सामने वाले व्यक्ति को तू और दूर वाले व्यक्ति को वह कहते हैं। पर जिसे तू कहते हैं और वह कहते हैं वह स्वयं भी अपने को मैं ही कहता है। चाहे दुनिया में सबके कल्पित नाम रखे हुए हैं, किन्तु नाम से कोई दूसरा ही उन्हें बुलाता है। कोई भी स्वयं को मैं छोड़कर नाम से नहीं बुलाता। नाम परायों के व्यवहार के लिये है स्वयं अपने व्यवहार के लिए मैं ही है। अतः सब मानवों का वास्तविक एवं सबसे प्रिय नाम मैं (आत्मा) ही है। केवल मानवों का ही नहीं सब प्राणियों में भी यही मैं या स्वयं समानरूप से व्याप्त है। जैसे मैं स्वयं बोल रहा हूं। तू स्वयं प्रश्न करने के लिए आ गया। वह स्वयं जाग उठा है। वे स्वयं पहुंच गये। वे नारियां स्वयं पनघट से पानी ला रही है। बच्चे स्वयं खेलने लगे। वृद्ध स्वयं चिन्तामग्न है। कुत्ता स्वयं भौंकने लगा। गाय स्वयं रम्भाने लगी। कोयल स्वयं गाने लगी। तोता स्वयं राम-राम बोलने लगा। मच्छर स्वयं घुस आये। मक्खियां स्वयं भिनभिनाने लगी। कीटाणु ने स्वयं काट लिया। इस प्रकार सब मनुष्यों, बच्चों, बूढ़ों, पुरुषों-स्त्रियों, पशुओं-पक्षियों, कीड़ों, कीटाणुओं के नाम अलग-अलग हैं। रूप अलग-अलग हैं। सबका परिचय पृथक्-पृथक् है। किन्तु सबका स्वयं एक ही है। जो सबमें पिरोये हुए स्वयं को पहचान लेता है वह आत्मा की आत्मा का दर्शन कर लेता है अर्थात् वह परमात्मा के विराट् रूप का दर्शन कर लेता है।

पश्चिम वालों की नैतिकता मात्र मनुष्यों के प्रति सत्कर्म या कल्याण कर्म करने का उपदेश देती है पर अध्यात्मवादी जीवमात्र को, प्राणीमात्र को अपना ही आत्मा जानकर विश्व कल्याण के लिए जीता है। हंस को तीर लगने पर सिद्धार्थ की स्वानुभूति से आंखों में आंसू छलक आते हैं। एक कबूतर की रक्षा के लिए राजा शिवि अपने शरीर के लोथड़े को तराजू पर तोल देते हैं।

पश्चिम के दार्शनिक अन्य जीवों का मांस खाते हुए और मद्यपान करते हुए मनुष्यों को सदाचार का उपदेश देने के लिए पुस्तकें लिखते हैं किन्तु भारत का अध्यात्मवादी दार्शनिक सारी सृष्टि में आत्मदर्शन करके विश्वव्यापी अहिंसा एवं सदाचरण को अपने प्रत्यक्ष जीवन से सीखता है।

यह विश्व का सर्वोत्तम भौतिक आदर्श, राजनैतिक आदर्श, सामाजिक आदर्श, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श है।

जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति उपकार कर्म करता है तो उसके पीछे नैतिक प्रेरणा क्या है? इसी का महत्त्व सबसे अधिक है। यदि मनुष्य भौतिकवादी दृष्टिकोण से एक पदार्थ का टुकड़ा ही है तो एक पदार्थ के टुकड़े को दूसरे पदार्थ के टुकड़े के प्रति सदाचरण क्यों करना चाहिए? इसका कोई समाधान नहीं मिलता है। ईसाई धर्म में कहा है—ईश्वर सबका पिता है और मानव परस्पर बंधु हैं। इसलिए बंधुभाव से दूसरे का उपकार करें। बौद्ध धर्म सभी प्राणियों को परस्पर साथी-संगी मानकर सदाचार की शिक्षा देता है। जैन दर्शन जीवदया की प्रेरणा देता है। इस प्रकार परोपकार की नैतिक प्रेरणाएं भिन्न-भिन्न हो सकती है। बंधुभाव से, मित्रभाव से, पुत्रभाव से, साथी के भाव से, खुदा का बंदा मानकर, जीवभाव से, दुःखी प्राणी से प्रेमभाव से, करुणा भाव से, रक्षा भाव से, अहिंसा भाव से, परोपकार का बदला चुकाने के भाव से आदि-आदि। किन्तु अध्यात्मवादी दूसरे का उपकार वास्तव में दूसरे का परोपकार न मानकर स्वयं अपना ही उपकार मानते हैं। किसी प्राणी के लिए मैं जो कुछ करता है, वह इसलिए कि वह बंधु-भाई है, मित्र-संबंधी, परिचित है, दुःखी जीव है, निर्धन है, सहायता का पात्र है या परोपकार के बदले परोपकार का पात्र है। इसलिए नहीं वरन् केवल इसलिए कि वह केवल मेरी अपनी ही आत्मा है। इसलिए जिसे दुनिया परोपकार समझती है वह वस्तुतः स्व-उपकार ही है। दूसरे के प्रति हमदर्दी को सहानुभूति कहते हैं। अध्यात्मवादी व्यक्ति सहानुभूति के स्थान पर स्वानुभूति से कर्म करता है। वह दूसरों पर तरस खाकर, दया करके, उसका दुःख दूर नहीं करता वरन् उसे स्वयं अपना ही दुःख मानकर क्लेशहरण करता है।

दूसरों के प्रति कल्याण कर्म का मनुष्य को कुछ अभिमान हो सकता है। किन्तु स्वयं अपनी सेवा का अभिमान होता ही नहीं। इसलिए अध्यात्मवादी निराभिमान भाव से सारे विश्व को आत्मा जानकर निष्काम सेवा का आनन्द लेता है।

अध्यात्मवादी विश्व का भरपूर कल्याण करने के साथ अपना परम कल्याण भी साधता जाता है। अपनी मुक्ति और जग का भला दोनों साथ-साथ सिद्ध होता जाता है। वह ऐसा पूर्ण विकसित, परम पवित्र, निष्काम एवं निःस्वार्थ महामानव बन जाता है कि उसका प्रत्येक कर्म स्वतः विश्व कल्याण का महायज्ञ बन जाता है। उसके कर्मों में ईश्वरीय शक्ति, ईश्वरीय विभूति, ईश्वरीय निष्ठा, ईश्वरीय माधुर्य एवं सौन्दर्य प्रकट होने लगता है। उसके स्पर्शमात्र से असंभव काम संभव होने लगता है। वह धरती पर चलता फिरता देवता है, वह जीवन्मुक्त बनकर जीते जी ही मोक्ष का आनन्द अनुभव करता है। जैसे श्रीरामकृष्ण, रामतीर्थ, महर्षि रमण, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि महापुरुषों ने इसी जन्म में ब्रह्मानन्द की लीला का रसास्वादन किया है।

इस शरीर के पात के पश्चात् ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुष परामुक्ति का लाभकर परब्रह्म परमेश्वर के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति मानव को पशुत्व से नरत्व, नरत्व से देवत्व और देवत्व से ब्रह्मत्व की ओर क्रमिक विकास करती हुई जीवनरूपी कमल को पूर्ण प्रफुलित कर देती है।

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि भारतीय संस्कृति में धर्म के बाद मोक्ष की आवश्यकता क्या है? यह वैसा ही है जैसा नैतिकता के ऊपर आध्यात्मिकता क्यों है? नैतिकता के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता स्पष्ट की जा चुकी है। आध्यात्मिक प्रेरणा से नैतिकता कैसे पूर्ण विकसित होती है, वह भी स्पष्ट किया जा चुका है। धर्माचरण का अर्थ कर्तव्यपालन अथवा नैतिक सदाचार ही है। कर्म अथवा धर्म पर द्वैत एवं नानात्व बना ही रहता है। अद्वैत अथवा एकत्व प्राप्त नहीं होता है। इसकी प्राप्ति के लिए मोक्ष अनिवार्य है।

कर्म मनुष्य को तीन प्रकार से कर्मचक्र अथवा भवचक्र में बांध लेता है। कर्म किये बिना ही गुजारा नहीं, बिना कर्म के संसार का भला नहीं हो सकता। किन्तु कर्म करते हुए हम ही कर्म के बंदी हो जाएं, जगत् का कल्याण करते हुए हम अपना ही अकल्याण कर लें तो बड़े घाटे का सौदा होगा।

कर्म करते हुए कर्म का परिणाम तो आगे होता है, किन्तु कर्म का छींटा पहले कर्ता पर पड़ता है। जैसे बन्दूक चलाते हुए गोली सीधी तो आगे निकलती है पर धक्का पीछे पड़ता है। इस प्रकार कर्म कर्ता को रंगता जाता है। यदि क ने ख की हत्या की तो तात्कालिक आगे का परिणाम ख की मृत्यु, तात्कालिक पीछे का परिणाम (कर्म का रंग) हुआ 'क' का हत्यारा बन जाना। तो हत्या के कर्म ने ही 'क' को हत्यारा बनाया। यों ही कर्म किसी को चोर बना देता है। अन्यथा चोर, हत्यारा, डाकू किसी के माथे पर लगा हुआ नामपट्ट नहीं है। पर कर्म उसके मन पर जो रंग छोड़ता है, उसी से वह सज्जन या दुष्ट बन जाता है। कर्म की यह रंगत

ज्यों-ज्यों गहरी होती जाती है, त्यों-त्यों आदत बन जाती है। आदत धीरे-धीरे चरित्र बन जाती है और चरित्र मनुष्य का भाग्य बन जाता है—

Sow a thought, it becomes an act
Sow an act, it becomes a habit
Sow a habit, it becomes a character
Sow a character, it becomes a destiny.

कुकर्म करके समाज की नजर से या पुलिस से भले ही बच जाएं पर कर्म की रंगत और आदत के फंदे से नहीं बच सकते। हिटलर का साथी Eachman जो शुरू में एक खून करने से भी डरता था, आदत लग जाने से संसार का सबसे बड़ा हत्यारा बन गया।

कर्म, फल की वासना भी कर्ता को बांध देती है। मनुष्य कर्म करने के बाद फल के लोभ से अपने मन की सारी शक्ति फल की प्रतीक्षा में लगा देता है जिससे आगे कर्म की प्रगति रुक जाती है। कई बार जल्दी फल प्राप्त करने के लिये वह उतावलेपन में भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाता है। कई बार फल को अधिक महत्त्व देने के कारण वह बिना कर्म का कष्ट उठाये फल पाने के लिए कुछ चेष्टा करता है। बिना परिश्रम के पैसा कमाना चाहता है। बिना उचित तपस्या के लाभ पाना चाहता है। बिना परीक्षा दिए प्रमाण-पत्र लेना चाहता है। कई बार फल पर दृष्टि रखने से, फल को ही लक्ष्य मानकर फल के लोभ से कर्म की सौदेबाजी करने लगता है। कई बार अपेक्षित फल न मिलने से हताश, निराश होकर अपने कर्तव्य कर्म को ही लात मार बैठता है। फल की वासना उसे इस जन्म में भी उतावला बावला बनाती रहती है और यदि वह फल की अधूरी इच्छा लेकर मरता है, तो कर्मफल की आकांक्षा उसे अगले जन्म में भी भटकाती रहती है। इसलिए जो सकामकर्मी है वह कर्म करते हुए कर्म के चक्र में बंध जाता है और कर्मफल के दल-दल में गहरा फंसता जाता है।

कर्म कर्ता को कर्तापन के अहंकार में भी बांधता जाता है। अच्छे से अच्छा कर्म करने के बाद भी यदि कर्तापन का अहंकार बढ़ जाए तो यह वैसे ही है जैसे बढ़िया खीर पकाने के पश्चात् उसमें मुट्ठी भर बालू डाल दी जाए। यह क्षुद्र अहंकार ही मनुष्य को स्वार्थी, समाजद्वेषी एवं ब्रह्म से विमुक्त करने वाला कारण है। समाज में स्वार्थ के संघर्षों की अपेक्षा अहंकार के संघर्ष अधिक चल रहे हैं।

दो कुत्ते हड्डी के स्वार्थ पर लड़ते हैं, पर दो नेता अहंकार की लड़ाई, प्रतिष्ठा की लड़ाई, ईर्ष्या की लड़ाई में कुत्तों से भी ज्यादा भयंकर और लम्बी लड़ाई लड़ते हैं। इसलिए कर्म करते हुए कर्ता कर्म की रंगत में रंगता जाता है, उसकी आदत में बंधता जाता है, फल की वासना में बावला बना रहता है। अहंकार के स्थूल हो

जाने से ईश्वर से बिछुड़कर समाज में अन्य कार्यकर्ताओं से संघर्ष करता रहता है—तो ऐसा कर्मी जन्म-जन्मान्तर में कर्म-बंधन में ही बंधा रहता है। यही कर्मों का बंधन—पुनर्जन्म का बंधन ही भवबंधन है। इसलिए कर्तव्य कर्म का आचरण करने वाले व्यक्ति को आध्यात्मिक प्रेरणा से भगवान् की प्रीति के लिए सत्कर्म करते हुए कर्मों का संग, कर्मफल की वांछा एवं कर्तापन का अहंकार सभी कुछ प्रभु के चरणों में समर्पित कर देना चाहिये। ऐसे निष्काम कर्मयोग द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। आदत के बंध टूट जाते हैं। फल का लोभ समाप्त हो जाता है और कर्तापन का अहंकार भी धुल जाता है। इस चित्तशुद्धि के बाद व्यक्ति ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बन जाता है। उसके निर्मल अन्त:करण में स्वत: ही ब्रह्मज्योति प्रकाशित होने लगती है। ''कबीरा मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर पाछे पाछे हरि फिरे कहत कबीर कबीर।।'' अभी तक जीव ब्रह्म को पुकारता था। अब चित्त निर्मल होने पर स्वयं ब्रह्म (मैं) ही आत्मा (मैं) को पुकारता है। वह अपने भीतर जिस निर्लिप्त आत्मा का दर्शन करता है वह नेत्र खोलने पर सारे विश्व में भी उसी आत्मा का ही दर्शन करता है। जिस तुलसीदास ने अपने निर्मल अन्त:करण में 'सीयाराम' को देखा उसने नेत्र खोलने पर गाया—

'सीयराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।'

जब निष्काम कर्म अथवा धर्म का आचरण करते-करते मनुष्य के अन्तर से उसका सच्चा मैं ही मैं को पुकारे तब उसे सब कर्म-धर्म त्यागकर अपने आपसे मिलने हेतु मोक्षमार्ग पर पग रखना चाहिए। इसलिए भगवान् गीता में अपने अन्तिम उपदेश में कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। 18/66

अर्थात् हे मानव! सब धर्मों का परित्यागकर तू मेरे पास आ जा।

कर्म की सार्थकता इसी बात में है कि हम कर्मचक्र से छूट जाएं। धर्म की सार्थकता इसी बात में है कि धर्म करते-करते धर्म से उठकर मोक्ष के अधिकारी बन जाएं। यह मोक्ष ही जीवन की परिपूर्णता है। जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। धर्म, अर्थ और काम, इसी लक्ष्य तक पहुंचने की तीन क्रमिक सीढ़ियां हैं—पहले काम (सांसारिक सुख) फिर अर्थ—आवास, धन्य-धान्य, राजभोग, फिर धर्म-नैतिक आचरण। सबसे ऊंचा सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष है। जो भगवान् 'जीवनं सर्वभूतेषु' है, जीवन में विकास करते-करते स्वयं विश्वजीवन का केन्द्र, सब जीवों का अंतिम अमर जीवन बन जाना ही मोक्ष है, उस भगवान् की प्राप्ति है।

जीवन का महत्त्व

आजकल बहुत से नवयुवकों को जब किसी दुर्व्यसन से बचने के लिए कोई बड़ा गुरुजन समझाता है कि धूम्रपान या नशे की गोलियों से जीवन बर्बाद मत करो तो वे तपाक से उत्तर देते हैं—'यदि मैं अपना जीवन बर्बाद करता हूं तो आपको क्या हानि है? जब उन्हें समझाया जाता है कि यह जीवन समाज की थाती और प्रभु का वरदान है, तो वे कहते हैं श्वास हम लेते हैं तो मिल्कीयत समाज की कैसे हो गई। हम ईश्वर को ही नहीं मानते हैं तो जीवन को ईश्वरीय वरदान कैसे मानें।

यह ठीक है कि मानव जीवन श्वास पर अवलम्बित है। किन्तु सभी के जीवन श्वास की दया पर ही नहीं है। अमीबा में जीवन है किन्तु श्वसन प्रक्रिया संभव ही नहीं है। सूई की नोक पर पांच सौ अमीबा रह सकते हैं। वर्षाऋतु की समाप्ति पर मेढक धरती के नीचे बिना श्वास लिए समाधि जैसी अवस्था में आठ-आठ मास तक जीवित पड़े रहते हैं। भूत-प्रेतों के जीवन में भी श्वसन की कोई आवश्यकता नहीं है। सूक्ष्म शरीर भी बिना श्वसन के जीवितों के समान लीला करते हैं। मुक्त आत्मायें भी श्वास की दया पर जीवित नहीं रहतीं।

प्राणों की लीला प्राणियों में चलती है, किन्तु यह लीला भी बड़ी रहस्यमयी है। क्या प्राण जीवन का आधार है अथवा जीवन का लक्षण है? उत्तर में कहना पड़ेगा कि प्राण समस्त जीवन का आधार नहीं है। क्योंकि जीवन के कई स्तर बिना प्राणों के सिद्ध हो रहे हैं। प्राणियों में भी प्राण जीवन का आधार न होकर जीवन का लक्षण मात्र है। जीवन में वह शाश्वत चेतना है जो प्राणों को चलाती है। कई बार समाधि अवस्था में प्राण (श्वसन) बंद होने पर डॉक्टर जीवित प्राणी को भी भ्रम से मृत मान बैठते हैं। अत: जीवन व्यापक तत्त्व और प्राण उसके अधीन है। सामान्य प्राणियों में प्राण जीवन का लक्षण मात्र है जीवन का कारण नहीं।

जब नवयुवक कहता है कि प्राण हम चलाते हैं। हम ढोते हैं। श्वास हम लेते हैं तो प्रश्न पैदा होता है कि इन प्राणों को चलाता कौन है? वेद में कहा है—

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राण: प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। 1/8, केनोपनिषद्

अर्थात् जो स्वयं प्राणों की दया पर नहीं जीता पर जिसकी कृपा से सब प्राणियों के प्राण चलते हैं उसी को तुम ब्रह्म जानो न कि उसको जिसकी अन्य लोग उपासना करते हैं। मनुष्य दिन में औसतन 21 हजार 600 सौ श्वास लेता है। प्रति चार सेकंड में श्वास भीतर जाकर ऑक्सीजन से रक्त को शुद्ध कर भीतर की गंदी वायु को लेकर बाहर आ जाता है। यह अद्‌भुत श्वसन लीला कौन चला रहा है? यदि कहें कि शरीर चला रहा है तो मृतक का शरीर श्वासों को क्यों नहीं चला सकता? इसलिए स्पष्ट हो जाता है कि हमारी चेतन जीवनी शक्ति ही श्वासों को चला रही है और जब वह शरीर का संग छोड़ देती है तो श्वसन एवं हृदय का स्पन्दन जो उसी पर अवलम्बित था। तुरन्त बंद हो जाता है।

प्राणी क्या है? श्वास ही प्राण है। श्वास क्या है? शरीर में संचार करने वाली वायु को ही श्वास कहते हैं। प्राण पांच प्रकार के होते हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान। प्राण अन्दर जाने वाली वायु, अपान बाहर निकलने वाली वायु, समान बारीक नस-नाड़ियों तक अन्न-रस को पहुंचाने वाली वायु। व्यान-परिश्रम अथवा धनुष पर प्रत्यन्चा चढ़ाने के समय, भार उठाने के समय ली जाने वाली वायु। उदान—प्राण प्रणयनन या विसर्जन के समय निकलने वाली वायु।

नवयुवक कहता है कि श्वास हम लेते हैं तो उसका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि श्वास उसकी इच्छा से नहीं चल रही है। स्वतः चल रही है। सुप्तावस्था में, बेहोशी में भी चलती रहती है। इसलिए प्राणों को चलाने वाला मनुष्य से ऊपर कोई और होना चाहिए। वायु का स्वभाव आकाश की ओर भागने का होता है। क्योंकि वायु खाली स्थान में ही संचार करती है। शरीररूपी यंत्र में वायुरूपी पक्षी कैसे टिका हुआ है इसी पर बड़ा विस्मय होता है। महात्मा रविदास ने कहा है—

नवद्वारे का पींजरा, तामे पक्षी पौन (पवन)।
रहिबे को अचरज महा, गये अचंभो कौन?

वास्तव में दो कान, दो नासिकाद्वार, दो आंख, मुख और मल-मूत्र के कुल मिलाकर नौ बड़े द्वारों से पवन रूपी पक्षी बड़ी सुगमता से बाहर आ सकता है। इसके साथ शरीर में लाखों रोमछिद्र भी वायु के निकलने के लिए पर्याप्त द्वार हैं। इन रोमछिद्रों से पसीना बाहर निकलता है और उसीसे वायु भी निकल सकता है। फिर श्वास टिका हुआ कैसे है? इस पर एक और अचम्भा यह है कि श्वास स्थिर समरूप में टिका हुआ भी नहीं है। जब प्रतिदिन 21 हजार 600 श्वास इस पिंजरे से बाहर निकलकर ब्रह्माण्ड की सैर करता है और पुनः पिंजरे में लौट आता है। इसलिए मानव शरीर स्वयं अपने आपमें सब रहस्यों में सबसे बड़ा रहस्य बना हुआ है।

पश्चिम के वैज्ञानिकों से मैंने इस विषय में बार-बार चुनौती देकर पूछा है क्या विज्ञान ने आज तक कोई यंत्र बनाया है जो वायु से चलता हो? जिसमें नौ बड़े-बड़े द्वार और लाखों छिद्र जैसे छोटे-छोटे द्वार भी खुले हों और वायु यंत्र में से 21 हजार 600 बार प्रतिदिन बाहर निकलकर पुनः अपने आप भीतर प्रवेश करता हो। अभी तक किसी वैज्ञानिक से समाधानकारक उत्तर नहीं मिला। वे स्वयं सहमत हैं कि यह एक रहस्य ही है।

श्वास का बाहर निकलना ही मृत्यु है। यदि बाहर निकला हुआ पुनः लौटकर भीतर न आये तो यह शरीर क्षणभर में मृतक होकर गिर जाए। मुंगेर में एक बालक दीपावली पर मुख से फूंक लगाकर गुब्बारा फुलाता है और श्वास अन्दर खींचने से गुब्बारा पिचक कर उसके मुंह में चला जाता है। 10-12 बार ऐसा करके वह कुछ एकत्रित बच्चों को तमाशा दिखा रहा है। अचानक एक बार गुब्बारा अन्दर खींचने पर उसकी श्वास नलिका पर अटक गया और वह तत्क्षण गिरकर मर गया। इतनी कच्ची श्वास की डोरी पर जीने वाला मानव कैसे कह सकता है कि श्वास वह लेता है और जीवन उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। जीवन का दाता और प्राणों का प्राण परब्रह्म परमेश्वर ही है। इसलिए जीवन प्रभु का एक महान् और दिव्य वरदान है।

प्राणी प्राणायाम द्वारा अपने प्राणों से प्राणेश्वर की अर्चना करता है। भक्त अपने प्राण की माला में प्रभु का नाम पिरोकर श्वास-प्रश्वास की सुमिरन की माला से प्राणदाता परमेश्वर की पूजा करता है। योगी अन्तकाल में प्राणों को ब्रह्मरंध्र में चढ़ाकर प्राण विसर्जन वेला में अपने प्राणों के पुण्य प्राण प्राणेश्वर के चरणों में चढ़ाकर मुक्त हो जाता है।

श्वास श्वास में हरि जपो
वृथा श्वास मत खोय
न जाने एही श्वास में
आवन होय न होय।



यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म तमश्नुते।।

जब इस मनुष्य के हृदय में रहने वाली सब कामनाएं नष्ट हो जाती हैं तब वह अमृत हो जाता है और इसी जीवन में ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।



मृत्यु रहस्य

जिस प्रकार जीवन एक रहस्य है उसी प्रकार मृत्यु उससे भी बड़ा रहस्य है। जो जीवन को थोड़ा बहुत भी समझ पाते हैं वे भी मृत्यु के रहस्य के सामने चकरा जाते हैं। जीवन आजीविका से भिन्न है। आजकल की भौतिकवादी एवं समाजवादी सरकारें जब जन कल्याण के द्वारा जीवन का स्तर ऊंचा उठाने की बात करती हैं तो वास्तव में वे रोटी, कपड़ा, मकान द्वारा आजीविका का स्तर ऊंचा कर पाती हैं, जीवन का स्तर नहीं। जीवन आजीविका से भिन्न है। आजीविका में हजारों रुपया वेतन पाने वाला अधिकारी या ऐश्वर्य में जीने वाला लखपति व्यापारी जीवन में क्षुद्र, कमीना और स्वार्थी हो सकता है। दूसरी ओर धनहीन, साधनहीन, आजीविकाविहीन विवेकानन्द या रामतीर्थ जीवन में अत्यन्त महान् हैं। जिस तरह आजीविका जीवन नहीं है, उसी प्रकार मात्र हृदयगति का बंद होना या साँस का निकल जाना ही मृत्यु नहीं है।

मरना जीवन की एक बड़ी लाचारी है।
इसके आगे दुनिया ने मानी हार है।।

वास्तव में देश एवं विदेश को विजय करने वाले बड़े-बड़े योद्धा एवं विजेता भी मृत्यु के सामने हार जाते हैं। यहां किसी का वश नहीं चलता।

सृष्टि को रचकर परम पुरुष परमात्मा ने जीवन की डोर तो मानव को थमा दी है, किन्तु मृत्यु की डोरी अपने हाथ में ही रखी है। मृत्यु की नकेल पर सारी जीवसृष्टि बनी हुई है। इसी शासन के द्वारा सारी सृष्टि उस परम शक्ति के वश में है। यदि मृत्यु का अंकुश न रहता तो मानव को कुकर्म अथवा स्वेच्छाचार से रोकने का कोई उपाय ही नहीं बचता। अतः शासन की दृष्टि से जीवन से भी मृत्यु का महत्त्व अधिक है।

आज विज्ञान ने बहुत बड़ी प्रगति की है। पदार्थ का अणु एवं परमाणु तक विश्लेषण करके और जीवन को जीवकोषों के रूप में सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करके परखा जा रहा है। किन्तु मृत्यु तत्त्व पर कोई वैज्ञानिक परीक्षण या विश्लेषण सफल नहीं हो सका। मृतक की शव परीक्षा भी मृत्यु का विश्लेषण नहीं कर

सकती। अधिक से अधिक वैज्ञानिक यही बता सकते हैं कि मृत्यु कैसे हुई? चोट द्वारा, हृदयगति के बंद हो जाने से, विष द्वारा, रोग द्वारा आदि। किन्तु मृत्यु कैसे हुई कि व्याख्या करने वाले वैज्ञानिक यह नहीं बता सकते कि मृत्यु क्यों हुई? अर्थात् व्यक्ति मरता ही क्यों है? Science can explain how but not why? अन्तिम क्यों का उत्तर वैज्ञानिक के पास नहीं है। वे इस प्रश्न को टालने के लिए कह देते हैं कि सभी लोग मरते हैं। All men are mortal. किन्तु सब लोग क्यों मरते हैं? इसका कोई वैज्ञानिक उत्तर उनके पास नहीं है। मृत्यु वह रहस्यमयी घाटी है जहाँ वैज्ञानिक परीक्षण करने वाले बड़े-बड़े वैज्ञानिकों की वाणी मूक हो जाती है। स्वयं वैज्ञानिक भी मृत्यु की चपेट में आकर धूल में मिल जाते हैं। उस घाटी से लौटकर कोई संसार को बताने के लिए नहीं आता कि मृत्यु क्या है?

हृदयगति और श्वासगति का चलना जीवन का लक्षण मात्र हो सकता है, स्वयं जीवन ही नहीं। इसी प्रकार हृदयगति और श्वासगति का बंद होना मृत्यु का लक्षणमात्र है स्वयं मृत्यु ही नहीं। हृदय एक यंत्र है जो रक्त को पम्प करके सब अंगों को भेजता रहता है। रक्त के इस पंप के चलते रहने से हृदय में स्पन्दन होता है। उसी स्पन्दन से नाड़ी की गति भी चलती है। रक्त को शोधन करने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। हमारे फुप्फुस (फेफड़े) नासिका के द्वारा शुद्ध वायु को भीतर खींचते हैं और रक्त के शोधन के पश्चात् दूषित वायु को बाहर निकालते हैं। हृदय की गति और नाड़ी की गति लगभग साठ से सत्तर कंपन प्रति मिनट है। इसे लगभग एक सेकंड प्रति स्पन्दन माना जा सकता है। इसकी तुलना में श्वास का भीतर जाना और लौट कर आना चार सेकंड में पूरा होता है। एक दिन में औसतन 21,600 श्वास मनुष्य लेता है। दिनभर में हृदय का स्पन्दन औसतन 86,400 हो जाता है। वैज्ञानिक यह नहीं बता सकते कि हृदय स्पन्दन क्यों करता है? और श्वासगति क्यों चलती है? उनके वैज्ञानिक परीक्षण अधिक से अधिक यही बता सकते हैं स्पन्दन कैसे चलता है? और श्वासगति कैसे चलती है? इसी प्रकार वे यह नहीं बता सकते हैं कि हृदयगति और श्वास की गति बंद क्यों हो जाती है? मृतक का परीक्षण कर वे जांचते हैं कि क्या हृदयगति चल रही है या श्वासगति चल रही है अथवा नहीं और दोनों गति बंद होने पर वे घोषणा कर देते हैं कि रोगी मर गया है। इस प्रकार हृदयगति और श्वासगति का बंद होना मृत्यु का लक्षणमात्र हुआ, मृत्यु का कारण नहीं। हृदयरूपी यंत्र यदि एक मृतक के शरीर से निकालकर दूसरे हृदयरोगी के शरीर में Heart Plantation Operation द्वारा लगा दिया जाये तो वहां वह काम करने लगता है। यह वैसे ही है जैसे एक बिजली की लाइन में विद्युत् प्रवाह बंद होने के कारण बल्ब बुझ जाये और वही बल्ब जहां विद्युत् का प्रवाह चलता हो वहां लगाने से पुनः काम करने लगे। इसी प्रकार Eye

Plantation के Operation आजकल सफल हो रहे हैं। इससे सिद्ध होता है कि हृदय का स्पन्दन किसी अदृश्य जीवनीशक्ति द्वारा चल रहा है। विद्युत् जैसी उस जीवनीशक्ति का सम्बन्ध टूट जाने से स्पन्दन बंद हो जाता है और पुनः जीवनी-शक्ति वाले शरीर से सम्पर्क होने पर चलने लगता है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि हृदय अपने आप स्पन्दन नहीं करता। जीवनी-शक्ति से स्पन्दन करता है और हृदय अपने आप बंद नहीं होता, चेतन जीवनी शक्ति के लोप होने पर स्पन्दन बंद हो जाता है। इस चेतन जीवनीशक्ति के शरीर से विलग होने को ही मृत्यु कहा जा सकता है।

मृत्यु क्या है? यह जनसाधारण के लिए ही नहीं वरन् वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों के लिए भी सबसे बड़ी चुनौती है। जैसे Potassium Cynide का स्वाद आज तक पता नहीं चल सका। क्योंकि जिह्वा से कुछ बोलने या लिखने से पहले जीवन लीला समाप्त हो जाती है। उसी प्रकार मृत्यु के चुंबन के पश्चात् कोई वैज्ञानिक या दार्शनिक यह बताने में समर्थ ही नहीं रहता कि मृत्यु क्या है?

मृत्यु एक बड़े रहस्यमय ढंग से छाया की तरह जीवन का पीछा करती रहती है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे बिल्ली कबूतर का पीछा करते-करते अंत में उसे थकाकर खा जाती है। उसी प्रकार मृत्युरूपी बिल्ली जीवनरूपी पक्षी को दौड़ा-दौड़ाकर, थकाकर उसे अपना कलेवा बना लेती है।

जनसाधारण मृत्यु को एक आकस्मिक विभीषिका के रूप में देखता है जो अकस्मात् न जाने कहां से, किस दिशा से, किस क्षेत्र से, किस स्थान पर और किस समय घात लगाकर एक डायन के समान मारक (मारने वाली) काली छाया से जीवन को दबोच लेगी। साँसों के दुर्बल पक्षी को एक ही झपट्टे में मारकर खा जायेगी। मृत्यु के इस रूप ने मानवता को इतना भयभीत कर रखा है कि सामान्य मानव मृत्यु को ही सबसे बलवान मान लेता है। वह मृत्यु के एक हलके दांव से ही प्रतिदिन जीवन को हारता देखता है। इसलिये एक कवि ने लिखा है—

'जिन्दगी थक गयी मौत चलती रही'

जीवन तो कुछ समय के बाद दम तोड़ जाता है। किन्तु मृत्यु न थकती है और न ही दम तोड़ती है। मृत्यु इतनी निश्चित है कि लोगों ने निश्चितता के लिए मृत्यु को उपमान (जिससे उपमा दी जाये) मान लिया है। अंग्रेजी का मुहावरा As sure as Death यही बात प्रकट करता है। एक दूसरे मुहावरे Man is mortal से भी यही ध्वनि निकलती है। जीवन एक अनिश्चित वस्तु मान ली गई है और मृत्यु निश्चित है। यह वैसा ही लगता है कि प्रकाश तो असत् है और अंधकार ही सत् है। मृत्यु की निश्चितता होते हुए भी मृत्यु का क्षण अनिश्चित है। यही मृत्यु को

अधिक भयावह बना देता है किन्तु—

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाप्यकृतं पुनः।

मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती कि आपका काम पूरा हुआ कि नहीं। वृक्ष का फल पकने पर गिरे तो किसी को दुःख नहीं होता किन्तु मृत्युरूपी आंधी कच्चे-पके फल, फूल, बीज आदि किसी को भी क्षणभर में धराशायी कर देती है। इसी कारण मानव मृत्यु से भयभीत रहता है।

काल के दो अर्थ हैं, दोनों सम्बन्धित हैं। एक समय, दूसरा मृत्यु। वास्तव में जितनी वस्तुएं काल में हैं वे वास्तव में काल के गाल में ही हैं। काल उन्हें खा जाता है। हमारे शरीर काल में जीते हैं। एक समय था जब शरीर नहीं था। एक समय है जब शरीर है। एक समय होगा जब शरीर नहीं होगा। इस प्रकार जो समय (काल) में जी रहा है वह काल के पैने दांतों तले ही जी रहा है। काल उसे कब खा जाये उसका उसे क्या भरोसा? कबीर के शब्दों में :

कबीरा गर्व न कीजिये काल गहे कर केश।
न जाने कब मारिहैं, क्या घर क्या परदेश।।

मृत्यु, शत्रुओं का भी महाशत्रु है और जीवन में ही छिपकर बैठा है। काल रूप वह भविष्यत् को केशों से पकड़कर वर्तमान में घसीट कर लाता है और वर्तमान को खाकर, उसकी सूखी हड्डियां अतीत में फेंकता जाता है। इस प्रकार हर आगे आना वाला क्षण पलक झपकते ही वर्तमान बन जाता है और पलक खोलते ही अतीत में चला जाता है। अतीत प्रशांत महासागर के समान है जहां जाकर वर्तमान के शव शांत हो जाते हैं। भविष्यत् अंध महासागर के समान है जिसका कोई निश्चय नहीं है। अतीत तो स्वयं मृत होने से शांत है और भविष्यत् अनिश्चित होने से गहरे अंधेरे में पड़ा हुआ है। अतीत के प्रशांत महासागर और भविष्यत् के अंध महासागर के मिलनबिन्दु का नाम ही वर्तमान का क्षण है। वर्तमान की सत्ता एक क्षण के समान क्षणिक है—

जगत चबैना काल का कछु मुख में कछु हाथ में।

काल के स्वरूप को समझना काल पर विजय पाने के लिए अनिवार्य है। काल की भयानकता का सारा जोर उन्हीं वस्तुओं पर लगता है जो देश और काल में हैं। अर्थात् जो भौतिक हैं। मानव का शरीर और मन एवं बुद्धि से सम्बन्धित मोह का संसार सबकुछ भौतिक होने के कारण काल में हैं अर्थात् काल के गाल में है। मनुष्य को इस तन-मन एवं जगत् के मोह से मुक्त करने के लिए उसके मन में इनके प्रति वैराग्य पैदा करना अनिवार्य है। जब तक जगत् का राग है तब तक मानव मोह में बंधा रहता है। जगत् की वस्तुएं नश्वर होने के कारण मरती या नष्ट होती हैं तब

वस्तुतः हमें कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि नाश होना उनका स्वभाव ही है। प्रतिक्षण लाखों बुलबुले फूटते हैं, हजारों फूल झड़ते हैं, अनेक जीव मरते हैं पर हमें कोई शोक नहीं होता। प्रभु की सृष्टि में किसी वस्तु के टूटने से हमें शोक नहीं होता। हमें शोक तब होता है जब उस वस्तु या व्यक्ति की हमारे मन में बनी हुई मोह की तसवीर टूटती है। मोह शब्द मुह धातु से बना है जिसका अर्थ है मूर्च्छित करना, मुग्ध करना, ज्ञान पर पर्दा डालना। नशे से, चोट से मनुष्य मूर्च्छित होता है। इन्द्रजाल या जादू से उसकी बुद्धि चकरा जाती है। अतिशय सौंदर्य या ऊंचा पद, अधिक धन लोभ, लाभ आदि से भी बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है, और मनुष्य मोहांध एवं मदांध (मस्ती में अंधा) हो जाता है। किसी वस्तु के प्रति अज्ञानजनित अतिशय आकर्षण मोह है। किसी व्यक्ति के प्रति ज्ञानजनित आकर्षण प्रेम है। प्रेम मुक्त करता है और मोह बांधता है। यह मोह ही शोक का कारण है। जो व्यक्ति देह, गेह (घर) और जगत् के मोह में अंधे रहते हैं उन्हें ही मृत्यु का भय सबसे अधिक होता है।

मानव के मन में देह, गेह के प्रति वैराग्य पैदा करने हेतु संतों ने काल अथवा मृत्यु का वर्णन किया है। उनका उद्देश्य मानव को डराना नहीं है। वरन् मानव का मोहनाश करके उसे निर्भय बनाना है। शास्त्र में कहा है—

गृहीत इव केशैषु, मृत्युना धर्ममाचरेत्।

अर्थात् यह मानकर कि मृत्यु ने केशों से पकड़ रखा है, मनुष्य को धर्माचरण करना चाहिये। भाव यह है कि मृत्यु ने जब केशों से पकड़ा हुआ है तब न जाने किस क्षण मृत्यु शरीर को मार डाले? इसलिए एक भी क्षण नष्ट न करते हुए वर्तमान के क्षण को धर्मपरायण कर लो। जैसे घर में आग लगने पर, घर में डाकुओं का हमला होने पर मनुष्य सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य को तत्काल करना चाहता है।

उसी प्रकार देहरूपी गेह पर मृत्यु का हमला जारी है, यह विचार कर तत्काल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धर्म का पालन करना चाहिये। कबीर के शब्दों में—

पानी केश बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायेगा, ज्यों तारा प्रभात।।

माली आवत देखिके, कलियां करे पुकार।
फूली-फूली चुन लियो, कल ही हमारी बार।।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मानव देह की नश्वरता बताने के लिए उसकी कुशा की तेज नोक पर टिकी हुई ओस की बूँद से उपमा दी है।

श्मशान भूमि में जाकर प्रायः लोगों की बुद्धि को ठोकर लगती है कि देह और गेह को वे सबकुछ समझ बैठे थे। वह कितना क्षणभंगुर है। किन्तु श्मशान वैराग्य प्रायः थोड़ी देर ही रहता है और संसार पुनः मानव को अपने मोह में बांध

लेता है। महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? उत्तर में युधिष्ठिर महाराज ने कहा कि मानव रोज अपनी आंखों के सामने अपने पड़ोसियों एवं घर के स्वजनों को मरते देखता है। स्वयं श्मशान भूमि तक ले जाता है और उनका अन्तिम संस्कार करता है, फिर भी वह समझता रहता है कि मैं नहीं मरूंगा। इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है? एक ओर मृत्यु की भयंकर विभीषिका और दूसरी ओर माया का प्रबल जाल। इनके बीच में मानव सुख-दु:ख की आंख मिचौनी खेलता रहता है। मृत्यु के आंसुओं के ऊपर माया का पर्दा डालकर अपनी कृत्रिम मुसकान बिखेर देता है। मनुष्य अपने अन्दर के दु:खों को भुलाने के लिए ऊपर से बनावटी हँसी हँसता है और लोगों को माया भरे शब्दों से सूचना देता है कि यहाँ सब कुछ कुशल मंगल है, जबकि वास्तव में उसका शरीर प्रतिक्षण मर रहा है।

भारत सेवा संघ के संस्थापक आचार्य स्वामी प्रणवानंदजी जब बचपन में ब्रह्मचारी विनोद के नाम से पहचाने जाते थे तभी वह श्मशान भूमि से एक खोपड़ी उठा लाये थे। उस खोपड़ी को सामने रखकर उसके ऊपर उन्होंने अपनी कई पीढ़ी के पूर्वजों की सूची टांग रखी थी। वे रोज अपने मन को यह संस्कार देते थे कि जिस प्रकार इन सब पूर्वजों के शरीर को मृत्यु खा गयी इसी प्रकार मेरे शरीर की भी गति होगी। इससे उनके मन में देह और गेह के प्रति दृढ़ वैराग्य उत्पन्न हो गया। बिना वैराग्य के विवेक विचार उत्पन्न नहीं हो सकता। मृत्यु के विषय में विवेकपूर्वक विचार करने से स्पष्ट होता है कि मृत्यु जीवन की एक स्वाभाविक अवस्था है जिससे भय खाने का कोई कारण नहीं है। परिवर्तन के क्रम में जैसे माता के गर्भ में शुक्र का बीज कई रूप परिवर्तित करता है। अपने भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) रूप का फोटो देखकर कोई अपने को पहचान नहीं सकता। स्वयं अपने ही जन्म के समय का फोटो बिना किसी साथी के पहचान नहीं सकता कि मैं ही हूं। जिस प्रकार शुक्र से भ्रूण, भ्रूण से शिशु, शिशु से बाल, बाल से किशोर, किशोर से तरुण, तरुण से नवयुवक, फिर युवक, फिर प्रौढ़, फिर वृद्ध, फिर रोगी, परिवर्तन की स्वाभाविक अवस्थाएं हैं। उसी प्रकार वृद्धावस्था एवं रुग्णावस्था के बाद अगली स्वाभाविक अवस्था देहांत है। जिससे चिंतित या दु:खी होने का कारण ही नहीं है। जैसे जन्म की खुशी के लड्डू बांटे जाते हैं। शैशवावस्था में मुंडन संस्कार के लड्डू बांटे जाते हैं। बाल्यावस्था में शालाप्रवेश पर लड्डू बंटते हैं। किशोरावस्था में यज्ञोपवीत संस्कार पर खुशियां मनाई जाती है। तरुणाई में सगाई एवं विवाह के लड्डू बंटते हैं। प्रौढ़ावस्था में संतान उत्पत्ति पर लड्डू बांटे जाते हैं। हर जन्म दिन पर खुशियां मनाई जाती है। षष्ठीपूर्ति पर उत्सव मनाये जाते हैं। स्वर्ण जयंतियां, हीरक जयंतियां मनाई जाती हैं। उसी प्रकार वृद्धावस्था के बाद

अगला पड़ाव देहांत का आने पर भी उत्सव मनाना चाहिये। क्योंकि उसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। भगवान् ने गीता में इसी भाव को समझाते हुए कहा है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कोमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। 2/13, गीता

अर्थात् जैसे शरीर कौमार्य, यौवन और जरावस्थाओं में परिवर्तित होता रहता है उसी प्रकार देहांत की अवस्था है। उसमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता।

बिना हेमंत (पतझड़) के बसंत आ ही नहीं सकता। बिना सड़े-गले वृद्ध रोगी शरीरों के देहांत के प्रकृति का परिवर्तन चक्र ही रुक जायेगा और सारा संसार हाय हाय की चीत्कार से भरा हुआ एक विराट् अस्पताल बन जायेगा। खेत में झाड़ी-झंखाड़ को साफ किये बिना उत्तम खेती असंभव हो जायेगी।

इस प्रकार मरण तो जीवन के लिए अनिवार्य पूर्वावस्था है। उदाहरण के लिए हमारे सामने एक सुन्दर लाल कश्मीरी सेब है। उसकी सुन्दरता, उसकी लालिमा, उसका रूप जब तक अपना बलिदान न दे तब तक सेब हमारा आहार नहीं बन सकता। सेब के सौंदर्य, लालिमा एवं रूप को हम छुरी की धार एवं दांतों की मार से स्वयं मृत्यु देते हैं। तब वह सेब अपनी शक्ति से हमें जीवन देता है। शैशव के मरे बिना कोई बालक नहीं बन सकता और बालपन के मरे बिना युवक नहीं बन सकता।

भारतीय दर्शन एवं समस्त भारतीय धर्म सम्प्रदायों में पुनर्जन्म का सिद्धान्त माना गया है। भगवान् गीता में कहते हैं—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। 2/27, गीता

जन्मे हुए का मरना निश्चित है और मरे हुए का पुनर्जन्म। यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त सारी सृष्टि में विज्ञान द्वारा प्रतिष्ठित एवं प्रमाणित है। बीज परिपक्व होने पर गिरता है और अपने जैसे वृक्ष और अनेक बीज पैदा कर जाता है। मानव सृष्टि में भी पुनर्जन्म के अनेक ऐतिहासिक प्रमाण देश और विदेश में उपलब्ध होते हैं। अम्बाला के छोटे से शिशु अश्वनी कुमार को जन्म से ही सूर एवं तुलसी के अनेक पद कंठस्थ थे। जो वह तुतली भाषा में सारे उत्तर भारत के मंचों पर गा-गा कर सुनाता था। श्रीमती सरोज बाला नामक बाल-विदुषी को, शैशव से ही अनेक वेदमंत्र एवं धर्मशास्त्रों पर बिना किसी विद्यालय में पढ़े ही असाधारण अधिकार था। उसने पूर्वजन्म का परिचय भी बताया जो पूर्णतया प्रमाणित हुआ। ये दोनों अभी तक पुनर्जन्म के जीवित प्रमाण हैं। अतः मृत्यु केवल एक विश्राम स्थल के समान है जहाँ थका-हारा जीव पुराने थके हुए शरीर को त्याग कर नये युवा तन-मन से

आगे की मोक्षयात्रा प्रारम्भ करता है। एक स्थान पर स्वामी रामतीर्थ विनोद में कहते हैं—

मृत्यु तो एक नौकरानी है जो हाथ में नये सुन्दर वस्त्र लिए खड़ी है और प्रार्थना करती रहती है कि मालिक, कपड़े बदल लीजिये। मैं उस नौकरानी की ओर देखता भी नहीं।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि जीवन और मृत्यु प्रकृति माता के दो स्तनों के समान हैं। जब माता जीवनरूपी स्तन से दूध पिलाते थक जाती है तो मृत्युरूपी स्तन पर लगा देती हैं।

यहूदी, ईसाई और मुसलमान धर्म में एक ही जन्म माना गया, वे पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते। अत: वे तथा भौतिकवादी दोनों ही मृत्यु को जीवनरूपी नाटक का अन्तिम काला पर्दा मानते हैं। मृत्यु की भयावह घाटी के उस पार भी जीवन है ऐसा वे नहीं मानते जैसा कि आर्य धर्म में माना जाता है। सेमिटिक धर्म में इतना तो मानते हैं कि कयामत (महाप्रलय) के दिन तक मृतकों के शव (रूहों के रूप में जो आत्मा से मिलता-जुलता शब्द है) कब्रों में पड़े रहेंगे और कयामत के दिन उनके भले-बुरे कर्मों का न्याय होगा। किन्तु भौतिकवादी नास्तिक न कयामत को मानते हैं और न अन्तिम ईश्वरीयन्याय को। इसलिए मृत्यु उनके लिए जीवन की पूर्ण समाप्ति अथवा सर्वनाश की घड़ी है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मृत्यु की चपत लगने पर मनुष्य भविष्यत् के बारे में सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। भविष्यत् की स्पष्ट कल्पना न होने के कारण नास्तिकों को अन्तिम घड़ी में भयंकर मनोवैज्ञानिक क्लेश होता है। एक महान् नास्तिक जो आत्मा-परमात्मा में विश्वास नहीं करता था, मरते समय बोलने लगा O God, If there is God! Save my soul if there is Soul. इसी प्रकार चीन के दिवंगत राष्ट्रपति माओ ने अपनी स्त्री को जो मृत्यु का वसीयतनामा लिखा उसमें लिखा Now both of us are being separated. We are moving in two different world. जब कम्यूनिज्म की मान्यता में परलोक है ही नहीं तो दूसरे लोक में जाने का अर्थ ही क्या होता है?

परलोक और पुनर्जन्म दोनों अन्योन्याश्रित हैं। यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सेमिटिक धर्म पुनर्जन्म नहीं मानते परन्तु कयामत के बाद स्वर्ग-नरक की कल्पना करते हैं जो तर्कसंगत सिद्ध नहीं होता। बराकपोर्ट (न्यूयार्क, अमेरीका) के First Beptist Mission के महापुरोहित रेबरेन्ड डाइक्लर्क (जिनके निवास पर मैं अतिथि के रूप में लगभग एक मास तक ठहरा था।) एक दिन कहने लगे कि आप हिन्दू लोग मृतक का शव जलाकर बड़ा अन्याय करते हैं। मेरे पूछने पर उन्होंने कहा

कि जिन बड़ों का सारी उमर सम्मान करते हैं मरने पर उनको स्वयं आग लगाकर जला देते हैं। यह बड़ा क्रूर दिखाई देता है। उसने कहा कि हम मृतकों के लिए सुन्दर कफन और बक्सा बनवाकर उसमें सुरक्षित रखते हैं। ऊपर सुन्दर पत्थर का स्मारक बना देते हैं। मैंने कहा, प्रतिव्यक्ति की कब्र के लिए कम से कम तीन फुट चौड़ी और आठ फुट लम्बी भूमि अवश्य लगती है। संसार में सारी जनसंख्या के लगभग ढाई अरब ईसाइयों में, लगभग 75 करोड़ मुसलमानों में, कुछ बौद्ध देशों में भी गाड़ने की प्रथा है, आदिवासियों में भी गाड़ने की प्रथा है। कभी-कभी हिन्दू महात्माओं को समाधि दी जाती है। लगभग 25 वर्ष में संसार की आधी जनसंख्या बदल जाती है। अतः प्रत्येक 50 वर्ष में लगभग पौने चार अरब लोगों को कब्रें चाहिये। ईसाइयत प्रारम्भ हुए 2000 वर्ष और इस्लाम को प्रारंभ हुए 1400 वर्ष हो चुके हैं। यदि 2000 वर्षों में 1400 अरब लोगों की कब्रें और उनकी भूमि का हिसाब लगाया जाय तो धरती पर एक चींटी के भी रहने का स्थान नहीं बचता। फिर कयामत के दिन तो अभी तक बहुत दूर हैं। 10,000 वर्षों के 10,000 युग बीतने के बाद कयामत का दिन आयेगा, तब तक सारी धरती तो कब्रिस्तान बन चुकी होगी और जिस चन्द्रमा, मंगल ग्रह पर जाने का प्रयास करते हैं वहां भी कब्रिस्तान बन जायेगा। क्योंकि धरती पर जगह बचेगी ही नहीं। फिर वैज्ञानिक दृष्टि से कोई शरीर धरती के भीतर इतनी लम्बी अवधि तक सुरक्षित रह ही नहीं सकता। अनेक पुराने कब्रिस्तान बाद में खेत बन जाते हैं या नगर बस जाते हैं। धरती पर हल के फाल से अनेक खोपड़ियां निकलती हैं। जिनको बच्चे फुटबाल समझ कर खेलने लगते हैं। अंग्रेजी की एक कविता में एक बच्चा अपने बूढ़े दादा से हल द्वारा निकली एक खोपड़ी के विषय में कहता है कि यह फुटबाल मुझे दे दो। मैं इससे खेलूंगा। पर दादाजी ने कहा, नहीं बेटा! यह फुटबाल नहीं है। यहां युद्ध में बहुत सैनिक मारे गये हैं। और यह कब्रिस्तान है। इसी प्रकार बहुत सी कब्रें खुली हुई मिलती हैं जिनकी भुजा, टांग जंगली पशु खींचकर ले जाते हैं। कयामत के दिन कीड़ों से खाये शरीर और पशुओं के पेट में गई हुई मांस-मज्जा, फुटबाल की तरह निकली हुई खोपड़ियां आदि सब मिलकर पुनः मानव शरीररूप धारण कर अन्तिम न्याय में स्वर्ग या नरक में जायेंगे। आर्य धर्म में शरीर को केवल जड़ मिट्टी माना जाता है। इसलिये उसको जला देने से शरीर का न भयंकर तिरस्कार होता है और न पशुओं द्वारा नोच-नोच कर खाने की नौबत आती है और न उपजाऊ धरती जीवित मानवों से छीनकर मुर्दों के लिए सुरक्षित की जाती है। चेतन आत्मा को न मिट्टी का भय है। न आग की ज्वालाओं का भय है। उसे कर्मफल के लिए लम्बे समय तक प्रतीक्षा भी नहीं करनी पड़ती। इस प्रकार सेमिटिक धर्मों का कर्म सिद्धान्त बिना पुनर्जन्म सिद्धान्त के अवैज्ञानिक, तर्कशून्य सिद्ध होता है।

भारतीय दर्शन की पुनर्जन्म की मान्यता मनुष्य को आशावादी बनाती है। एक बूढ़े मौलवी साहब एक दूसरे मौलवी साहब से रो-रो कर कह रहे थे कि इस जन्म में तो बहुत गुनाह किये हैं अब मौत सिर पर नाच रही है। कयामत के दिन तक कब्र में रहना पड़ेगा। सुधार की कोई गुंजाइश भी नहीं रही। हाय! मेरा क्या होगा? इसकी तुलना में आर्यधर्मी जानता है कि इस जन्म में यदि इस लक्ष्य तक नहीं पहुंचे तो भगवान् अगला जन्म देंगे। जब तक मनुष्य परीक्षा पास नहीं करता उसे पुनः-पुनः परीक्षा में बैठने का अधिकार होना ही चाहिये। अतः हिन्दू आशावादी है कि आज की भूल का कल सुधार कर लूंगा। इस जन्म की बाजी अगर मैं हार भी गया तो अगले जन्म में पुनः नये सिरे से प्रयत्न करने का सुअवसर मिलेगा।

पुनर्जन्म तभी तक होता है जब तक मनुष्य मोक्ष के योग्य नहीं बनता। वेद में प्रार्थना है —

मृत्योर्माऽमृतं गमय्

हे भगवान्! मुझे मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाओ। अतः पुनर्जन्म का सिद्धान्त मोक्ष जैसे अन्तिम लक्ष्य पर पहुंचने से पहले बीच के पड़ाव के समान है। कोई कैलास यात्रा के मार्ग में कितने पड़ाव करता है यह उसके मनोबल और साधना पर निर्भर करता है। इसी जन्म में मोक्ष का अधिकारी बन जाना सर्वोत्तम है। पर यदि किसी कारण हम अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाये तो पिछले जन्म की सारी कमाई हमारे साथ चलेगी और योगभ्रष्ट के रूप में उत्तम परिवार के उत्तम संस्कारों के साथ अगला जन्म होगा जिससे भावी यात्रा सुगम हो जायेगी। अतः कर्म सिद्धान्त के लिए पुनर्जन्म का सिद्धान्त अनिवार्य है।

सेमिटिक धर्म कर्म सिद्धान्त को अन्तिम कयामत के दिन न्याय के रूप में मानता है पर परलोक एवं पुनर्जन्म को न मानने से उनके कर्म सिद्धान्त का आधार ही कच्चा रह जाता है।

Justic delayed is Justic denyed. विलम्बित न्याय अन्याय जैसा बन जाता है। अमेरीका के महान् लेखक क्रिस्टोफर ईशरहुड ने बाइबिल में जब यह पढ़ा कि ईश्वर दूर सातवें आसमान में बैठा हुआ है और उसका न्यायालय करोड़ों वर्षों के बाद कयामत के दिन खुलेगा तो उसने ईश्वर में विश्वास करना ही छोड़ दिया। उसने कहा कि ऐसे ईश्वर से कोई धरती का मजिस्ट्रेट ही अच्छा है। जो हमें कुछ मास या कुछ वर्ष में न्याय तो देता है। यदि किसी आदमी ने आज मुझे चोट मारी है और उसे दण्ड लाखों वर्षों के बाद मिलेगा तो यह घोर अन्याय है। अतः ईशरहुड गीता के प्रभाव से पुनः अपनी आस्था एवं जीवन बचा सका। आर्य धर्म मानता है कि ईश्वरीयन्याय अनवरत रूप से चलता रहता है। भगवान् का न्यायालय एक क्षण के लिए भी बंद नहीं होता। अतः कर्म हमें इस जन्म में भी

उत्तम मानव बनाता हुआ अगले जन्म में हमें उत्तम योनि में उत्तम संस्कारों के साथ पैदा करता है।

भौतिकवादी और सेमिटिक धर्म मानव के व्यक्तित्व का सूक्ष्म विश्लेषण करने में समर्थ नहीं हो सके। आर्य धर्म कहता है बाहर दिखने वाला मानव स्थूल शरीर है। उसे देखकर भले-बुरे की तुरत पहचान नहीं हो सकती। चोर के माथे पर कोई पट्टी नहीं लगी कि वह चोर है और संत बाहरी शरीर पर, बाहरी वेश-भूषा से संत नहीं कहलाता। सज्जन और दुर्जन के लिए मानव का सूक्ष्म शरीर मनुष्य का मन ही है। वास्तव में सब कर्मों का उद्गम इसी मन से होता है। यही मनुष्य को उठाता अथवा गिराता है। उससे भी अधिक सूक्ष्म एक कारणशरीर है जो एक जन्म की मूल वासनाओं को लेकर दूसरे जन्म में पहुंचाता है। स्थूल शरीर धान्य का बोझा ढोने वाले के समान है। सूक्ष्म शरीर का मन उतने ही धन या धान्य के हलके नोट ढोने वाले के समान है। और कारणशरीर विदेश जाना लाखों रुपये की हुण्डी या Travellor's cheque के समान होगा। मकान जलने पर कोई व्यक्ति रोता है, कोई हाय हाय करता है। पर समझदार व्यक्ति मकान बीमा पॉलिसी को सुरक्षित कर मकान से अलग हो जाता है। न रोता है, न हाय हाय करता है, क्योंकि उसे पॉलिसी द्वारा नया मकान मिलने वाला है।

इसी प्रकार शरीर के मरने या जलने पर स्थूल वस्तुओं के मोह में पड़े हुए लोग रोते हैं और हाय हाय करते हैं। किन्तु, उत्तमकर्मरूपी बीमा पॉलिसी वाले लोग शांत एवं संतुलित रहते हैं।

पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धान्त मोक्ष से पूर्व अनिवार्य होते हुए भी अन्तिम नहीं है। जैसे साबुन से कपड़े का मैल चला जाता है और अन्त में स्वयं साबुन को निकाल देना भी अनिवार्य होता है। उसी प्रकार अच्छे कर्मों द्वारा खोटे संस्कारों को धोने के पश्चात् कर्मरूपी साबुन को भी निकाल देना अनिवार्य हो जाता है। जो साबुन मैल को निकालता है उसकी झाग कपड़े में रह जाये तो वह स्वयं मैल बन जाती है। इसलिए कर्मों के चक्कर से छुटकारा ही मोक्ष है। कर्म की धन्यता इसी बात में है कि वे हमें कर्म चक्र से छुड़ा दें। जैसे फूल की सार्थकता इसी बात में है कि वह स्वयं खिल-झड़ कर फल के लिए स्थान बना दे—

फल कारण फूले बन राय,
फल लागे सो फूल बिलाय,
जाने कारण कर्म ही विकास
उपजे ज्ञान तो कर्म ही नाश

—रविदास

मृत्यु पर विजय पाने के लिए मृत्यु को अन्तिम अतिथि माना गया है।

सम्मान्यः सादरं मृत्युः जीवनस्य अन्तिमोऽतिथिः

आदरसहित मनुष्य को मृत्यु का सम्मान करना चाहिये क्योंकि जीवन का अन्तिम अतिथि है। जैसे जीवन भर अतिथि को देवता मानकर हम जीवन निर्वाह करते रहे हैं, इसी प्रकार इस जीवनलीला का अन्तिम अतिथि मृत्यु देवता है। उससे भयभीत होने के स्थान पर हमें सम्मान करते हुए जीवन की भेंट चढ़ा देनी चाहिये। इस पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—

हे रुद्र! जब आप अपना भिक्षापात्र लेकर मेरे द्वार पर आ जायें तो मैं आपके महाकाल विकराल रूप को देखकर डर न जाऊं। मैं मुसकराते हुए अपने प्राण रूपी पुष्प को आपके चरणों में डाल दूं।

इस प्रकार से सबका जाना निश्चित ही है। पर कब जाना है यह निश्चित नहीं है। प्रत्येक यात्रा के लिए मनुष्य कई दिन पहले से तैयारी करता है और मार्ग के लिए कुछ पाथेय तैयार कर लेता है। किन्तु, इस मृत्यु की यात्रा निश्चित है और अकस्मात् कब एक क्षण दिये बिना जाना पड़ेगा यह नियत नहीं है।

महायात्रा के लिए उचित तैयारी का न होना कितना बड़ा अभिशाप है। वास्तव में जीवन उसी का उत्तम है जो अपने समस्त साधन एवं सुकर्म इस महायात्रा हेतु लगाता है। आर्य धर्म में मृत्यु एक डरावनी डायन न होकर वह मृत्युदेव अथवा यमराज अथवा मृत्यु के शासक प्रलयंकारी शिव के रूप में वर्णित है। दुष्टों के लिए प्रलयंकर हैं, वही सज्जनों के लिए कल्याणकारी शिव हैं। कबीर कहते हैं—

जिण मरणे से जग डरे, मेरे मन आणंद।
कत मरिहौं कत जाहिहौं, पूरण परमानन्द।

अतः मृत्यु जीवन का अभिशाप न होकर प्रभु मिलन की वेला है। मोक्ष का महापर्व है, निर्वाण का महोत्सव है। इस महोत्सव का अधिकारी वही हो सकता है जिसने काल में जीते हुए भी कालातीत अमर आत्मा की साधना की है। जिसने अपने सच्चे स्वरूप को पहचाना है तथा अपनी अनुभूति से अमरत्व का आनन्द लाभ किया है।

कठोपनिषद् में भारत का छोटा-सा बालक नचिकेता साक्षात् मृत्युदेव से वार्तालाप करता है और मृत्युदेव द्वारा वर मांगने के लिए कहने पर आत्मविद्या और ब्रह्मविद्या का रहस्य पूछता है।

दूसरे शब्दों में वह आदर्श जिज्ञासु मृत्युदेव से ही मृत्यु का रहस्य पूछता है। अर्थात् मृत्यु से ही पूछता है कि आप मरेंगे कैसे? जिससे मृत्यु मर जाये और मैं

अमर हो जाऊं। अन्त में यमराज को हारकर उसे अमरत्व की विद्या बतानी पड़ती है। मृत्युदेव स्वयं कहते हैं—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं, तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं, निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।। 1/3/15

अर्थात् शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध रहित और अक्षय-नित्य, अनादि-अनंत एवं महत्-तत्त्व से श्रेष्ठ ऐसा जो आत्मतत्त्व है, उसे जानकर जीव मृत्युमुख से छूटता है।

केन उपनिषद् कहता है—

श्रोतस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाच (ँ) स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषच्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकदमृता भवन्ति।। 1/2

अर्थात् जो श्रोत का श्रोत, कर्णेन्द्रिय का भी कर्णेन्द्रिय, मन का भी मन, वाणी का वाणी, प्राण का भी प्राण, चक्षु का भी चक्षु और सब इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि के मूल प्रेरक एवं अधिष्ठान मूल चैतन्यरूप आत्मा को जान लेता है वह इस लोक से शरीर को त्याग कर जाने पर अमृत हो जाता है।

आद्यशंकराचार्यजी ने ठीक ही कहा है—

सच्चा जीवन क्या है? जिसकी मृत्यु न हो। और सच्ची मृत्यु वह है जिसका पुनर्जन्म न हो।



भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

मुण्डक उ., 2/2/8

अर्थात् परावर (कार्यकारण-रूप) ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर इस जीवात्मा के हृदय की अविद्या-ग्रन्थि खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय नष्ट हो जाते हैं और समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं।

